सतीश चन्द्र मित्तल
1857
की महान् क्रान्ति का
विश्व पर
प्रभाव

1857
की महान् क्रान्ति का
विश्व पर प्रभाव

सतीश चन्द्र मित्तल

॥ नामूलं लिख्यते किंचित् ॥

प्रकाशन-विभाग
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
नयी दिल्ली-110 055

1857

की महान् क्रान्ति का

विश्व पर प्रभाव

by Dr. Satish Chandra Mittal

Published by:

PUBLICATIONS DEPARTMENT
Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṅkalana Yojanā
Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',
Jhandewalan, New Delhi-110 055
Ph.: 011-23675667
e-mail : abisy84@gmail.com
Visit us at : www.itihassankalan.org, www.abisy.org

First Edition : Kali Yugābda 5117, i.e. 2015 CE

ISBN : 978-93-82424-19-2

Price : ₹ 50/-

Typesetting & Cover Design by:
Gunjan Aggrawala

Printed at:
Graphic World, 1659 Dakhni Sarai Street,
Daryaganj, New Delhi-110055
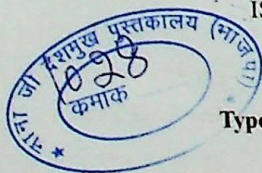
प्राक्कथन

सैकड़ों यूरोपीयों तथा भारतीय सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी दस्तावेजों, प्रमाणों तथा प्राप्त तथ्यों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के सभी मनगढ़न्त, अहंकारयुक्त तथा थोथे तर्क, अर्थहीन हो गए हैं कि भारत की 1857 की महान् क्रान्ति केवल कोई 'सिपाही विद्रोह', 'हिंदू या मुसलमानों का षड्यन्त्र', 'ईसाइयत के विरुद्ध संघर्ष', 'गोरे-कालों की लड़ाई' अथवा 'सभ्यता और बर्बरता का युद्ध' था। निश्चय ही सभी प्राप्त साधन-सामग्री के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि भारत तथा विश्व के इतिहास में यह महानतम क्रान्ति थी जिसके प्रभाव में न केवल ब्रिटिश साम्राज्य की चूलें हिल गईं अपितु यूरोप, अमेरिका तथा एशिया-जैसे विशाल महाद्वीप तथा उनके अनेक देशों पर इसके दूरगामी प्रभाव हुए थे। 1857 की महान् क्रान्ति के सम्मुख विश्व की अन्य प्रमुख क्रान्तियाँ– इंग्लैण्ड की 'शानदार क्रान्ति', फ्रांस की क्रान्ति (1789), अमेरिका का स्वाधीनता युद्ध तथा क्रान्ति (1775-'83) तथा रूस की बोल्शेविक क्रान्ति (अक्टूबर, 1917) अपनी प्रकृति, व्यापकता, जनता की सहभागिता तथा बलिदानों, प्रभावों तथा दूरगामी परिणामों की दृष्टि से अत्यन्त सीमित दायरे में सिमटकर रह गई थी। यह सर्वज्ञात है कि भारत की इस क्रान्ति में तत्कालीन ब्रिटिश-भारत की 20 करोड़ जनसंख्या में से लगभग 4 लाख लोग शहीद हुए थे, हज़ारों गाँव सदा के लिए विनष्ट हो गए थे, सैकड़ों नगर ध्वस्त हुए थे तथा दर्जनों क़िले खण्डहर बन गए थे।

यूरोपीय देशों में जहाँ इससे ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया, ब्रिटिश संसद्, ब्रिटिश समाचार जगत् तथा ब्रिटेन के गिर्जाघर तथा सामान्य जनता त्रस्त एवं भयभीत हो गई थी, वहाँ फ्रांस की सरकार एवं मुख्य समाचार-पत्रों– *ली सीशेल, रिव्यू डेस डेक्स मोण्डेस, रिव्यू डी पेरिस* तथा *ले ऐस्ट फेटे* ने क्रान्ति को खुलकर उजागर किया था। क्रान्ति से इटली-जैसे देश में, अपने देशवासियों में स्वाधीनता तथा एकीकरण की ललक पैदा कर दी थी। इटली के अनेक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं के साथ प्रसिद्ध राष्ट्रवादी मेजिनी ने अपने पत्र *इटालिया डेल पोपोलो* में भारत की क्रान्ति पर 23 लेख लिखे थे। वहाँ का वीर गैरीबाल्डी तो स्वयं भारत की क्रान्ति में भाग लेने के लिए चल पड़ा था तथा उसने अपना सामान एक समुद्री जहाज पर लाद दिया था। पुर्तगाल, जहाँ भारत की क्रान्ति से बेचैनी हुई, वहीं उसमें भारत में गोवा की बस्तियों के छिन जाने का भय व्याप्त हो गया। रूस का जार शासक एलेक्जेंडर द्वितीय सहित वहाँ के प्रसिद्ध विद्वान्

द्रोबोल्यूकोव तथा चर्निशेवस्की क्रान्ति से अत्यधिक उत्साहित थे। भारत की क्रान्ति ने समूचे अमेरिका महाद्वीप में हलचल पैदा कर दी थी। अमेरिका महाद्वीप में एक-दो दैनिक समाचार-पत्रों को छोड़कर दर्जनों पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय क्रान्तिकारियों के शौर्य तथा संघर्ष की मुक्तकण्ठ से सराहना की। नाना साहिब तथा झाँसी की रानी के जीवन पर अनेक लेख लिखे। दैनिक पत्रों में *न्यूयॉर्क ट्रिब्यून* तथा *न्यूयॉर्क टाइम्स* इनमें प्रसिद्ध थे। इनके अतिरिक्त *प्रिन्सटन रिव्यू, अटलांटिक मन्थली, नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू, वीकली ट्रिब्यून, न्यू इंग्लैण्ड एण्ड येल रिव्यू* आदि प्रसिद्ध पत्रों ने भारत की क्रान्ति पर अनेक समाचार प्रकाशित किये। समस्त एशिया, मुख्यतः भारत के आसपास के देश तो क्रान्ति से उद्वेलित, सशंकित तथा कौतूहल से परिपूर्ण रहे ही। फ़ारस के शाह, अफ़गानिस्तान के शासक दोस्त मोहम्मद खान (1793-1863), नेपाल के प्रथम राणा प्रधानमंत्री जंगबहादुर राणा (1816-1871) तथा उनका दरबार, तिब्बत के 12वें दलाई लामा त्रिनले ग्यात्सो (Trinley Gyatso : 1860-1875), भूटान के शासक, ब्रह्मदेश (म्यांमार) आदि सभी को क्रान्ति ने प्रभावित किया। संक्षेप में लगभग पाँच महीने (09 मई-20 सितम्बर, 1857 ई०) तक विश्व के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों की मुख्य सुर्खियाँ भारत की क्रान्ति तथा उसकी संघर्ष की घटनाएँ बनी रहीं।

निःसन्देह 1857 की क्रान्ति के पश्चात् आगामी नब्बे वर्षों (1857-1947) तक सीधे ब्रिटिश शासन भारत में रहने से, ब्रिटिश शासकों ने प्रयत्नपूर्वक 1857 की क्रान्तिकारी घटनाओं को छिपाने का या इसके एकपक्षीय वर्णन का भरपूर प्रयत्न किया। भारतीयों द्वारा भी इस ओर गम्भीरतापूर्वक शोध अत्यन्त सीमित मात्रा में हुए। वीर सावरकर ने ब्रिटिश म्यूजियम के 1,500 सन्दर्भ-ग्रन्थों के आधार पर अपना बहुमूल्य ग्रन्थ लिखा। परन्तु यह भी कटु सत्य है कि 'जूलियस सीजर' के मरने के बाद भी उसकी प्रेतात्मा अंग्रेज़-शासकों को सतत सताती रही। भारत का प्रत्येक गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग से लॉर्ड लिनलिथगो तथा लॉर्ड माउंटबेटन तक इससे सचेत रहे। अनेक प्रसंगों पर यह अंग्रेज़ों के भारतमंत्री विभाग का मुख्य विषय बना रहा। क्रान्ति की राजनैतिक विफलता के साथ भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष का नव अध्याय प्रारम्भ हुआ जो 1947 की आंशिक स्वतन्त्रता के साथ पूरा हुआ।

इस लघु पुस्तिका को तैयार करने में मैंने अनेक देशी-विदेशी विद्वानों के ग्रन्थों, विश्व के अनेक समाचार-पत्र-पत्रिकाओं, सरकारी पत्र-व्यवहारों तथा अन्य उपलब्ध सामग्री की सहायता ली है। अतः मैं उन सभी का हृदय से ऋणी हूँ तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आशा है कि प्रबुद्ध पाठक तथा देश के नवयुवक इतिहासकार '1857 की क्रान्ति के विश्वव्यापी प्रभाव'-जैसे उपेक्षित प्रकरण को गम्भीरता से लेंगे तथा इस विषय पर अपने आगामी शोध-ग्रन्थों से देश के उज्ज्वल इतिहास को विश्व के सम्मुख रखेंगे।

10 मई, 2015

सतीश चन्द्र मित्तल
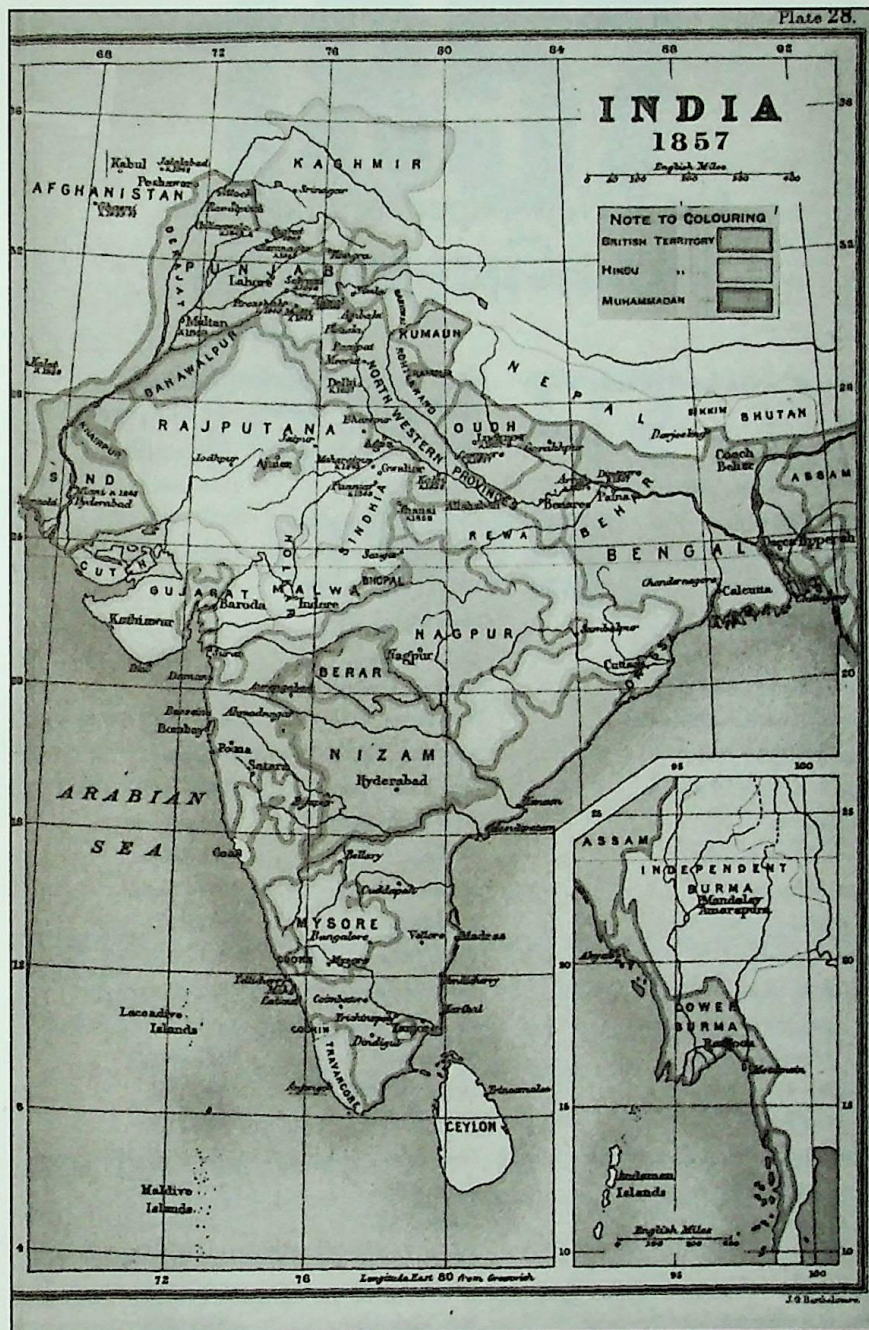
सन् 1857 ई० के भारत का राजनैतिक मानचित्र
(मानचित्र–सौजन्य : *इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया*, भाग 25, प्रकाशक : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1908)

List of Newspapers & Magazines mentioned in this book

Names of Newspaper/Magazine	Headquarters	Time Period
Blitz	Mumbai	1941-Mid 1990s
Gaganāñcala	New Delhi, India	1977-present
Harper's New Monthly Magazine	Broadway, USA	1850-present
Harper's Weekly	New York, USA	1857-1916
Journal of Indian History	Trivandrum, India	1946-present
L'Italia del popolo	Milan, Italy	1848-?
La Ragione	Philadelphia, USA	...
Le Siècle	Paris, France	1836-1932
Liberty Weekly Tribune	Liberty, Missouri, USA	1846-1883
New Englander and Yale Review	New Haven, USA	1819-1989, 1991-present
New-York Daily Times	New York, USA	1851-present
New-York Daily Tribune	New York, USA	1842-1866
Pañcajanya	New Delhi, India	1948-present
Port of Spain Gazette	Trinidad, T & T	1825-1956
Rāṣṭradharma	Lucknow, India	1947-present
Revista Contemporánea	Madrid, Spain	1852-1907
Revue de Paris	Paris, France	1829-1970
Revue des deux Mondes	Paris, France	1829-present
St. Louis Christian Advocate	St. Louis, Missouri, USA	1851-1882
The Atlantic Monthly	Washington, USA	1857-present
The Brooklyn Daily Eagle	Brooklyn, USA	1841-1955
The Ladies' Repository	Cincinnati, USA	1841-1876
The North American Review	Iowa, USA	1815-1940, 1964-present
The Saturday Review	London, UK	1855-1938
The Spectator	London, UK	1828-present
The Times	London, UK	1785-Present
The Trinidad Sentinel	Trinidad	1856-1864
The U.S. Magazine and Democratic Review	New York, USA	1837-1859

1857
की महान् क्रान्ति का
विश्व पर प्रभाव

न् 1857 की भारत की क्रान्ति विश्व की एक महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त प्रभावी तथा परिवर्तनकारी घटना थी। इसने न केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा औपनिवेशवाद की चूलों को हिला दिया, वरन् यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों में एक नवजीवन तथा चेतना जाग्रत् की। यह ध्वंसात्मक तथा सृजनात्मक– दोनों थी। इसके दूरगामी प्रभाव तथा परिणाम हुए। सामान्यतः इसका मूल्यांकन अधिकतर साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा एकपक्षीय, पूर्वाग्रहों से ग्रसित, सरकारी दस्तावेजों तथा ईसाई-मिशनरियों के रिकॉर्ड्स, तथ्यहीन तथा अप्रामाणिक दस्तावेजों के आधार पर किया गया है। इसके निष्कर्ष यूरोपीय जीवन के भौतिक मूल्यों तथा तात्कालिक परिणामों के आधार पर किया गया न कि इसकी प्रकृति, विश्वव्यापी क्रान्तियों से तुलना तथा भारत तथा यूरोप में इसके दूरगामी प्रभावों से।

अतः, अति संक्षेप में इसकी प्रकृति तथा विश्व की अन्य प्रमुख क्रान्तियों के सन्दर्भ में इसका विवेचन महत्त्वपूर्ण होगा। निश्चय ही 1857 की महान् क्रान्ति न कोई केवल एक

सिपाही विद्रोह थी[1], न कोई हिंदू या मुस्लिम षड्यन्त्र[2], न कोई धर्मांधों द्वारा ईसाइयों के विरुद्ध संघर्ष[3], न श्वेतों तथा कालों के बीच टकराव[4] या सभ्यता तथा बर्बरता के विरुद्ध संघर्ष[5] था।

---

1. अधिकतर ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखकों ने 1857 की क्रान्ति को एक 'सैनिक विद्रोह' माना है। इनमें से कुछ प्रमुख लेखक निम्न हैं :
   जे०डब्ल्यू० केयी, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द सेपॉय वॉर इन इण्डिया : 1857-1858*, तीन भाग (लन्दन, 1864-76) देखें, भाग एक, पृ० 274; जे०बी०मैलीशन, *द हिस्ट्री ऑफ़ द बंगाल आर्मी* (*'रेड पैम्फ्लेट'* के नाम से प्रसिद्ध), दो भाग (लन्दन, 1858); *हिस्ट्री ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी : 1857-1858*, तीन भाग (लन्दन, 1878-80); सर विलियम मूर, *रिकॉर्ड्स ऑफ़ द इन्टेलीजेंस डिपार्टमेण्ट ऑफ़ द गवर्नमेंट ऑफ़ द नॉर्थ-वेस्ट प्रोवान्सेस ऑफ़ इण्डिया ड्यूरिंग द म्युटिनी ऑफ़ 1857* (लन्दन, 1902), देखें भाग एक, पृ० 31-39; *चार्ल्स रैक्स, नोट्स ऑन द रिवोल्ट इन द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज ऑफ़ इण्डिया*, दो भाग (लन्दन, 1858); सर इवेलियन वुड, *द रिवोल्ट इन हिंदुस्तान* (1857-59) (लन्दन, 1908), पृ० 23; चार्ल्स बैल, *द हिस्ट्री ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी*, दो भाग (लन्दन, 1858); सर जॉर्ज फोरेस्टर, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी*, तीन भाग (एडिनबरा, 1904), पी०ई० रॉबर्ट्स, *हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इण्डिया अण्डर द कम्पनी एण्ड द क्राउन* (ऑक्सफोर्ड, 1934), पृ० 361; एच०एच० डॉडवेल (सं०), *द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, द इण्डियन एम्पायर* (1858-1918), भाग छः (लन्दन, 1932, इण्डियन प्रिंट, दिल्ली, 1964), पृ० v-vi; विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ, *द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया फ्रॉम द अर्लियस्ट टाइम्स टू द इंड ऑफ़ 1911* (लन्दन, 1920, संशोधित एस०एस० एडवर्ड्स, 1923); जॉन ब्रूस नॉर्टन, *टॉपिक्स फॉर इण्डियन स्टेट्समैन* (1858); सर अल्फ्रेड सी० लायल, *द राइज़ एण्ड एक्सपेंसन ऑफ़ द ब्रिटिश डोमिनियन इन इण्डिया* (लन्दन, 1893); पृ० 376; एच०जी० वेल्स, *ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड* (पेंगुइन, 1951 संस्करण); पृ० 293; *द एडिनबर्ग रिव्यू*, अप्रैल 1858
2. इसमें कुछ उल्लेखनीय प्रशासकों तथा इतिहासकारों के नाम हैं :
   सर जेम्स ऑटोरम (Sir James Outram) (अवध का मुख्य आयुक्त : 1856-1856), विलियम टेलर (William Taylor) (पटना का कमिश्नर : 1857), सर अल्फ्रेड सी० लायल (Sir Alfred Comyn Lyall) (पश्चिमोत्तर प्रोवेशेन्सेज़ का ल्युटेनेंट गवर्नर एवं अवध का मुख्य आयुक्त : 1882-1887), मार्टिन रिचर्ड गुब्बिन्स (Martin Richard Gubbins : 1812-1863) (अवध में ब्रिटिश अधिकारी), मेजर एफ०जी० हर्रियट (Major F.G. Harriott)(बहादुरशाह मुक़दमे में सरकारी वक़ील)
   इस सन्दर्भ में कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं :
   एच०एम० डूरेण्ड, *द लाइफ ऑफ़ लॉयल* (एडिनबर्ग, 1913), पृ० 69, 88; डब्ल्यू०डब्ल्यू० हंटर, *द इण्डियन मुसलमान्स* (लन्दन, प्रथम संस्करण, 1871) (1976 संस्करण), पृ० 131; वी०ए० स्मिथ, पूर्वोद्धृत, पृ० 723, 725; मार्टिन रिचर्ड गुब्बिन्स, *एन एकाउंट्स ऑफ़ द म्युटिनीज़ इन अवध एण्ड द सीज ऑफ़ द लखनऊ रेसीडेंसी* (लन्दन, 1858); थॉमस आर० मैटकॉफ, *द आफ्टरमैथ ऑफ़ रिवोल्ट* (प्रिन्सटन, 1964), पृ० 218; *प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द ट्रायल ऑफ़ मुहम्मद बहादुरशाह* (कलकत्ता, 1895), पृ० 159
3. एल०ई०आर० रीज, *ए पर्सनल नरेटिव ऑफ़ द सीज़ ऑफ़ लखनऊ फ्रॉम ईट्स कोन्क्वेस्ट टू इट्स रीलिफ* (लन्दन, 1858)
4. जे०डब्ल्यू० केयी, पूर्वोद्धृत
5. टी०आर० होम्स, *ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन म्युटिनी*, दो भाग (लन्दन, प्र०सं० 1883, चतुर्थ संस्करण, 1898)

इसके साथ ही यह क्रान्ति न ही एशियाई लड़ाकू स्वभाव की परिचायिका[1] या सामन्तवादी प्रतिक्रिया[2] की विषबेल थी। वस्तुतः यह महान् क्रान्ति जनभावनाओं की परिचायिका तथा धार्मिक व सांस्कृतिक तत्त्वों की उपज थी[3] जो बहादुरशाह ज़फर (1837-'57) के सम्राट् बनते हुए ही उसकी घोषणाओं[4], अवध की बेगम हज़रत महल (1820-1879) तथा अवध के अन्तिम विद्रोही नवाब बिरज़िस क़द्र व अन्य घोषणाओं[5] तथा बाद में रानी विक्टोरिया (Queen Victoria : 1837-1901)[6] की कोरी काग़ज़ी घोषणा में धार्मिक हस्तक्षेप न करने के आश्वासन से स्पष्ट होती है। इसके पीछे आर्थिक तथा भौतिक कारण गौण थे। साथ ही यह कोई आकस्मिक घटना न होकर पूर्ण नियोजित प्रयास तथा विशाल अभियान था।

यदि विश्व का कोई भी इतिहासकार या लेखक थोड़े समय के लिए अपने पूर्वाग्रहों तथा रूढ़िवादी दृष्टिकोण को भुलाकर विश्व के सन्दर्भ में गहराई से इसका विवेचन करे, तो इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं रहता कि विश्व के इतिहास में यह महानतम क्रान्तियों में से एक थी।

सन् 1857 की महान् क्रान्ति विश्व की प्रसिद्ध इंग्लैण्ड की 'गौरवपूर्ण क्रान्ति' (Glorious Revolution : 1688), 'फ्रांस की क्रान्ति', 'अमेरिका की क्रान्ति' तथा रूस की 'बोल्शेविक क्रान्ति' (Bolshevik Revolution) से अपनी प्रकृति, व्यापकता, विस्तृत घटनाओं तथा प्रभावों एवं परिणामों में भिन्न थी। इंग्लैण्ड की क्रान्ति 1688 ई० में जेम्स द्वितीय (James II : 1685-1688) के इंग्लैण्ड से भाग जाने पर, जहाँ टोरी (Tory) जेम्स द्वितीय के पुत्र को चाहते, वहाँ ह्विग विलियम (William III) को। मेरी द्वितीय (Mary II) तथा

---

1. जेम्स टालब्वाज ह्वीलर, *द शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया एण्ड ऑफ़ द फ्रंटियर स्टेट्स ऑफ़ अफगानिस्तान, नेपाल एण्ड बर्मा*, भाग पाँच (लन्दन, न्यूयॉर्क, प्रथम संस्करण, 1880), पृ० v
2. पर्सिवल स्पीयर, *ट्वीलाइट्स ऑफ़ द मुगल्स* (कैम्ब्रिज, 1951); कार्ल मार्क्स एवं एंगल्स, *द फर्स्ट इण्डियन वॉर ऑफ़ इण्डिपेंडेंस (1857-59)* (मास्को, 1959), पृ० 11; उल्लेखनीय है कि पुस्तक का शीर्षक भ्रामक है। इसमें वर्णित प्रत्येक लेख में 1857 को 'भारतीय विद्रोह' तथा स्वाधीनता संघर्षकर्ताओं को 'विद्रोही' कहा गया है; कोका अलेक्सेंड्रोवना एनन्तोनोवा व अन्य, *ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, भाग दो (मास्को, 1973), पृ० 76
3. सतीश चन्द्र मित्तल, *1857 का स्वातन्त्र्य संग्राम : एक पुनरावलोकन* (नयी दिल्ली, 2007), पृ० 80; श्री गोविन्द मिश्र, *हिस्ट्री ऑफ़ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया : 1857-1947* (नयी दिल्ली, 1993), पृ० 18
4. विस्तार के लिए देखें : इक़बाल हुसैन (सं०) *प्रोक्लेमेशन्स ऑफ़ द रिवोल्ट ऑफ़ 1857*, पृ० 1-173; आर०सी० मजूमदार, *ब्रिटिश पारामाउंटेसी एण्ड इण्डिया रेनीसां* (मुम्बई, 1963), पृ० 513
5. अवध की घोषणाओं के विस्तार के लिए देखें : इक़बाल हुसैन, *अवध रिवोल्ट प्रोक्लेमेशन्स ड्यूरिंग 1857-1858*; *प्रोसिडिंग्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस* (बंगलौर, 1997), पृ० 489-90
6. सतीश चन्द्र मित्तल, *राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष* (नयी दिल्ली, 2012), पृ० 22; रानी विक्टोरिया की 01 नवम्बर, 1858 की पूरी घोषणा के लिए देखें : ईश्वरी प्रसाद, *ए न्यू हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* (इलाहाबाद, 1956), अपेंडिक्स ए, पृ० i-iii; वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, *भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास* (नयी दिल्ली, 1997), पृ० 47-48

विलियम तृतीय– दोनों को संयुक्त शासन दिया गया। समझौता बिना किसी संघर्ष के हो गया।[1] विश्व के इस छोटे से देश ने इसे 'शानदार', 'रक्तहीन' क्रान्ति कहा तथा यहाँ के इतिहासकारों ने इसके बढ़-चढ़कर अतिरंजित तथा अतिशयोक्तिपूर्ण तराने गाये। तब फ्रांस की आबादी कुल ढाई करोड़ थी। 1789 ई० में फ्रांस की क्रान्ति हुई। यह यद्यपि इससे बाद हुई फ्रांस की 1830 तथा 1848 की क्रान्ति से अधिक प्रभावी थी, परन्तु ऐसी भी नहीं थी जिसने समस्त यूरोप के भविष्य को झकझोर दिया हो। नेपोलियन (Napoléon Bonaparte : 1804-1814) के आने के पश्चात् फ्रांस का प्रभाव-क्षेत्र अवश्य बढ़ गया, तथा यूरोप में आर्थिक स्पर्धा तथा राजनैतिक एवं सामरिक संघर्ष को बढ़ावा मिला था। परन्तु अपनी व्यापकता तथा फ्रांस के लोगों की भागीदारी की तुलना में यह सीमित थी तथा इसके प्रभाव स्थायी न हुए। सामान्यतः अनेक इतिहासकारों ने इसे 'मध्यवर्गीय क्रान्ति'[2] कहा है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर (1891-1956) के अनुसार, 'क्रान्ति के नारे– स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व बहुत सुन्दर थे, पर यह क्रान्ति समानता न ला सकी।'[3] जहाँ तक अमेरिका के स्वातन्त्र्य युद्ध तथा क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, अमेरिका की मूलतः खोज एक इतालवी भूगोलवेत्ता अमेरिगो वेसपुस्सी (Amerigo Vespucci : 1454-1512) के द्वारा हुई थी। कोलम्बस (Christopher Columbus : 1450-1506) के काल में जब इस 'न्यू फाउण्डलैण्ड' (Newfoundland) को पाया गया, तब से यहाँ ध्वंस तथा सृजन– दोनों का काल प्रारम्भ हुआ।[4] 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप के विभिन्न भागों से लोग यहाँ भागकर धन कमाने तथा कच्चा माल प्राप्त करने आए थे।[5] इन्होंने जहाँ दक्षिण अमेरिका में रहनेवाले रेड इण्डियन्स का सफ़ाया किया, वहाँ वे उत्तरी अमेरिका में नीग्रो लोगों का सफ़ाया न कर सके। संघर्ष मुख्यतः 17वीं शताब्दी के बसे यहाँ के वंशजों तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंतर्गत अंग्रेज़ों द्वारा टैक्सों में वृद्धि तथा

---

1. सी०ई० कैरिंगटन एवं जे० हैम्पडेन जैक्सन, *ए हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड* (कैम्ब्रिज, 1936), पृ० 426
2. जॉर्ज लेफेवरे, *द कमिंग ऑफ़ द फ्रेंच रेवोल्यूशन*, पृ० 135; जॉर्ज लेफेवरे, *द फ्रेंच रेवोल्यूशन, फ्रॉम ईट्स ओरिजिन टू 1793*, पृ० 45; साथ ही देखें : अल्फ्रेड कोबन, *द सोशल इंटरप्रेटेशन ऑफ द फ्रेंच रेवोल्यूशन* (कैम्ब्रिज, 1964), पृ० 52
3. देखें डॉ० कृष्ण गोपाल, *बाबा साहेब : व्यक्ति और विचार* (नयी दिल्ली, 1994), पृ० 265
4. उल्लेखनीय है कि 1992 में कोलम्बस के अमेरिका जाने के 500वें वर्ष दिवस पर विश्व के अनेक लेखकों और इतिहासकारों ने इसे एक नयी विश्व के खोज के रूप में देखा जिससे यूरोपीय देशों को आर्थिक साधनों की उपलब्धि हुई, जबकि दक्षिण अमेरिका तथा मैक्सिको के लेखकों तथा इतिहासकारों ने इसे एक स्वतन्त्र, विकसित सभ्यता के नष्ट होने के रूप में देखा जिसने वहाँ के वासियों को लूट-मारकर नष्ट कर दिया। अतः कुछ के लिए 500 वर्षों की समाप्ति– यह उत्सव मनाने का पर्व था जबकि दक्षिण अमेरिकी इतिहासकारों के लिए यह हज़ारों वर्षों में पनपी विकसित सभ्यता की प्रलयंकारी भयानक स्मृति का दिवस था।
5. हेरोल्ड ड्यूगने डेविस, *द युनाइटेड अमेरिका इन हिस्ट्री* (दिल्ली, 1968), पृ० 22, 25; धर्मवीर गाँधी (अनुवादक) *हैंडबुक ऑफ़ द युनाइटेड अमेरिका, यह अमेरिका है* (दिल्ली, 1964), पृ० 12

अमेरिकी व्यापार तथा काम-धन्धों पर प्रतिबन्ध से हुआ।[1] एक विद्वान् के अनुसार यह संघर्ष साम्राज्य के विस्तार तथा उसकी सुरक्षा के लिए था।[2] यह लड़ाई दोनों के आपसी आर्थिक हितों के कारण थी। मूलतः यह क्रान्ति कोई सांस्कृतिक, सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए कदाचित् न थी। इस संघर्ष तथा क्रान्ति में बेंजामिन फ्रेंकलिन (Benjamin Franklin : 1706-1790), जॉन एडम्स (John Adams : 1735-1826) तथा थॉमस जेफरसन (Thomas Jefferson : 1743-1826) का विशेष योगदान हुआ।[3] कुछ गिने-चुने इतिहासकारों ने 20वीं शताब्दी में अमेरिका के बढ़ते हुए प्रभाव से वशीभूत हो, इसके पूर्वकाल को भी विश्व में फ्रांस की क्रान्ति में सहायक लैटिन अमेरिका के स्वाधीनता आन्दोलन में सहयोगी तथा समस्त यूरोप में राष्ट्रवाद तथा प्रजातन्त्र की चेतना जगानेवाला बताया है।[4] सामान्यतः ऐतिहासिक दस्तावेज तथा प्रमाण तो यही बतलाते हैं कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक अमेरिका से अनेक देशों के लोग भली-भाँति परिचित भी न थे। एशिया के कुछ देशों को अमेरिका के अस्तित्व की जानकारी प्रथम विश्वयुद्ध से ही हुई।

सन् 1917 की रूस में 'अक्टूबर क्रान्ति' ('October Revolution') जारशाही के विरुद्ध थी तथा उसे विनष्ट कर दिया गया। राजसत्ता हथियाने पर इसके नेताओं में परस्पर टकराव हुआ। समाजवादी क्रान्तिकारी नेता लेनिन (Vladimir Ilyich Ulyanov alias Lenin : 1870-1924) ने मैंशेविक नेताओं को हटाकर रूस पर अधिकार कर लिया था। यह क्रान्ति मुख्यतः 16 अक्टूबर, 1917 से 05 दिसम्बर, 1917 तक रही। इस क्रान्ति में अत्यधिक ख़ून-ख़राबा, हिंसा तथा आतंक के दिन रहे। सोवियत यूनियन के रूप में इसका विस्तार वर्ग-संघर्ष तथा आर्थिक तत्त्व को आधार मानकर, हिंसा के मार्ग से अड़ोस-पड़ोस के ग्यारह देशों में अपना साम्राज्य स्थापित किया।[5] 1917-'92 तक इस क्रान्ति का कुछ देशों में अधिनायकवाद तथा भीषण नरसंहारों से हुआ। इस साम्यवादी साम्राज्यवाद में लगभग 10 करोड़ की बलि हुई।[6] विभिन्न देशों में राष्ट्रवादी शक्तियों ने इसका सतत विरोध किया।

परन्तु यह उल्लेखनीय है कि क्रान्ति के लानेवाले विद्वानों ने अपनी क्रान्ति की प्रशंसा में सभी हदें पार कर दीं। स्वयं लेनिन ने अपने शासनकाल (1917-1924) को 'अत्यधिक

---

1. धर्मवीर गाँधी, *यह अमेरिका है*, पृ० 16
2. एल०एच० गिप्सन, *द ब्रिटिश एम्पायर बिफोर द अमेरिकन रेवोल्युशन*, सात भाग (न्यूयॉर्क, 1936-1949); हेराल्ड इयुगने डेविस, पूर्वोद्धृत, पृ० 25
3. धर्मवीर गाँधी, *पूर्वोद्धृत*, पृ० 16
4. हेरोल्ड इयूगने डेविस, *द युनाइटेड अमेरिका इन हिस्ट्री* (दिल्ली, 1968), पृ० 35
5. विस्तार के लिए देखें : सतीश चन्द्र मित्तल, *विश्व में साम्यवादी साम्राज्यवाद का उत्थान एवं पतन* (नयी दिल्ली, 2006)
6. स्टीफेन कोर्टवोइस, *द ब्लैक बुक ऑफ़ कम्युनिज़्म : क्राइम्स, टेरर एण्ड रिप्रेसन* (हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1999), पृ० 4

प्रगति का काल', 'विश्व की महानतम क्रान्ति'[1], 'मानव इतिहास के एक नवयुग का प्रारम्भ'[2], 'अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद के लिए एक प्रकाश'[3], 'एक नवसमाजवादी समाज की स्थापना का दिवस'[4] तथा 'विश्व में प्रथम श्रमिक वर्ग का शासन का दिन'[5] बतलाया। सोवियत सरकार द्वारा स्थापित 'अकादमी ऑफ़ द सोशल साइंसेज' के अध्यक्ष प्रो० व्लादीमिर वी० अलेक्जेंड्रव ने इसे 'विश्व इतिहास में एक नवपृष्ठ'[6], 'मानव समाज के विकास में एक नवयुग'[7], 'औपनिवेशिक व्यवस्था के लिए एक कठिनाई'[8], अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के पुनर्गठन का नयी तरीका'[9], 'विश्व स्तर पर समाजवाद-साम्यवाद की विजय का परिचायक'[10] आदि बतलाया। यह क्रान्ति अधिनायकवादी रही तथा समानता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता किञ्चित् भी न ला सकी। मानवाधिकार को इसने कोई महत्त्व कभी भी न दिया। इसके विपरीत विश्व के अनेक मार्क्सवादी, ऑस्ट्रियाई दार्शनिक कौत्स्की (Karl Johann Kautsky : 1854-1938), ऑस्ट्रियाई लेखक ओट्टो बायूर (Otto Bauer : 1881-1938), ऑस्ट्रियाई क्रान्तिकारी फ्रेडरिक एडलर (Friedrich Wolfgang Adler : 1879-1960), रूस के महान् लेखक मैक्सिम गोर्की (Alexei Maximovich Peshkov : 1868-1936) आदि ने अनेक नृशंस अत्याचारों तथा वीभत्स कारनामों की तस्वीरें रखीं।[11] कौत्स्की ने इसे 'लोकतंत्र को विनष्ट करना' बताया। गोर्की ने इसे सामाजिक क्रान्ति नहीं, बल्कि 'जानवरी अराजकता' कायम करना बताया।[12] उसे 'रूस के नाजुक जीवन के लिए गम्भीर ख़तरा'[13] बताया। परन्तु आज विश्व की दृष्टि से बोल्शेविक क्रान्ति अतीत का सन्दर्भ बन गई है। अनेक विश्वविद्यालयों में पोस्ट-कम्युनिज़्म पर अनेक शोध-कार्य हो रहे हैं। कुछ गिने-चुने बुद्धिजीवी अभी भी इसकी शल्य-चिकित्सा कर इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। कम-से-कम अपनी आजीविका तो चला ही रहे हैं।

सन् 1857 का राष्ट्रीय संघर्ष विश्व के इतिहास में एक आश्चर्यजनक महान् घटना तथा भारतीय इतिहास का उज्ज्वल, दिव्य तथा गौरवशाली पृष्ठ है। यह विश्व के सबसे

---

1. बी०आई० लेनिन, *ऑन द ग्रेट अक्टूबर सोशलिस्ट रेवोल्युशन* (मास्को, 1971), पृ० 7, देखें : *कलेक्टेड वर्क्स*, भाग 26
2. *वही*, पृ०7
3. वही, पृ० 7
4. *वही*, पृ० 66, कलेक्टेड वर्क्स, भाग 26
5. *वही*, पृ० 7
6. व्लादीमिर वी० अलेक्जेंड्रव, *ए कन्टेम्परारी वर्ल्ड हिस्ट्री : 1917-1945* (मास्को, 1986), पृ० 11
7. *वही*, पृ० 12
8. *वही*, पृ० 15
9. *वही*, पृ० 19
10. *वही*, पृ० 11
11. शंकर शरण, *मार्क्सवाद के खण्डहर* (दिल्ली, 2004), पृ० 39-60
12. *वही*, पृ० 50
13. नोवाया जीज्न, 263, 22 मार्च, 1918 (उद्धृत) शंकर शरण, पूर्वोद्धृत, पृ० 50

शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध पहला देशवासी प्रयास था। विश्व के इतिहास में अथवा किसी भी यूरोपीय साम्राज्य के इतिहास में इतना प्रबल विरोध कभी न हुआ था।[1] यहाँ तक कि भारत में भी यदि महाभारत के युद्ध को छोड़ दें, तो कभी इतना व्यापक संघर्ष न हुआ था। यह एक ऐसा अद्‌भुत संघर्ष था जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की दादागिरि व आतंकवाद को एक खुली चुनौती दी थी। इसने विश्व को आगामी पाँच महीनों तक कम्पित, अचम्भित तथा कौतुहलयुक्त बना दिया था। इस युद्ध में भारत का ऐसा कोई अंचल या क्षेत्र न था जहाँ के व्यक्तियों ने बढ़-चढ़कर भाग न लिया हो। इस युद्ध में भारत का कोई प्रान्त या क्षेत्र न था जिसने इसमें भाग न लिया हो। यह कहना अज्ञानता का परिचायक होगा कि इस युद्ध में दक्षिण भारत शान्त रहा[2] बल्कि सच्चाई यह है कि दक्षिण भारत के लोगों ने उत्तर भारतीयों की भाँति भाग लिया।[3] यह कहना पूर्णतः मूर्खतापूर्ण होगा कि पंजाब ने अंग्रेज़ों का साथ दिया, बल्कि पंजाब में इस काल में चार बड़े हत्याकाण्ड हुए थे[4] तथा अंग्रेज़ों द्वारा निर्मित नयी जेल, जो अण्डमान में 'काले पानी' के रूप में विख्यात हुई तथा जिसे विद्वानों ने 'यातना घर' (Torture factory)[5] कहा, यहाँ पर पंजाब के संघर्षकर्ताओं को, जिसे सरकार ने 'सिपाही विद्रोही' कहा[6], 218 व्यक्तियों का पहला जत्था अण्डमान जेल में पंजाब से ही गया था।[7] अतः इस युद्ध में भारत के सभी क्षेत्र के लोगों ने भाग लिया। इसमें कोई भी वर्ग, सम्प्रदाय, जाति अछूती न रही। इसमें ग्रामवासियों, नगरवासियों, सैनिकों, पर्वतवासियों व वनवासियों ने निर्भयतापूर्वक भाग लिया था। इसमें सैनिकों के साथ कुछ रजवाड़ों, कृषकों, श्रमिकों तथा सामान्य जनता ने भाग लिया था। 1857 के महासमर में ब्रिटिश भारत की तत्कालीन 20 करोड़ जनसंख्या में से लगभग 4 लाख व्यक्तियों का बलिदान हुआ। अकेले दिल्ली, जहाँ की आबादी

---

1. विलियम डेलरिम्पल, *द लास्ट मुग़ल : द फॉल ऑफ़ दिल्ली, 1857* (पेंगुइन इण्डिया, 2006)
2. एस०एन० सेन, *1857* (दिल्ली, 1957), पृ० 407, 409; बिपन चन्द्र, *आधुनिक भारत* (दिल्ली, 1997 संस्करण), पृ० 103-108; बिपिन चन्द्र, के०एन० पणिक्कर, मृदुला मुखर्जी आदि, *इण्डियाज़ स्ट्रगल फॉर इण्डिपेंडेंस : 1857-1947*, (पेंगुएन, 1989), पृ० 32-33
3. वी०डी० दिवेकर, *साउथ इण्डिया इन 1857 वॉर ऑफ़ इण्डिपेंडेंस* (पूना, 1957); ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स 1859, द्वितीय सत्र, भाग 23, पृ० 467
4. ये क्रूर तथा भयंकर नरसंहार की घटनाएँ पेशावर, गुरुदासपुर, फिरोज़पुर तथा अजनाला में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा हुई। विस्तार के लिए देखें : सतीश चन्द्र मित्तल, *1857 के महासंघर्ष में क्या पंजाब अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार रहा ?* (कुरुक्षेत्र, 2007)
5. जस्टिस सोमनाथ अग्रवाल, *द हीरोज़ ऑफ़ सेल्युलर जेल* (नयी दिल्ली, 2006)
6. *वही*
7. वही, देखें बेडन को कैप्टन एच मैसे का पत्र, जनवरी, 1858, बोर्ड ऑफ़ सेलेक्शन, पृ० 1176, सेलेक्शन ऑफ़ बोर्ड्स कलैक्शन (इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन) (उद्धृत) निकोलस तार्लिंग, *द फॉल ऑफ़ इम्पीरियल ब्रिटेन इन साउथ ईस्ट एशिया* (मलेशिया, 1975), पृ० 24; देखें : *ज़र्नल ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री*, वॉल्यूम XXXVIII, पार्ट तीन, दिसम्बर, 1960, पृ० 505-526
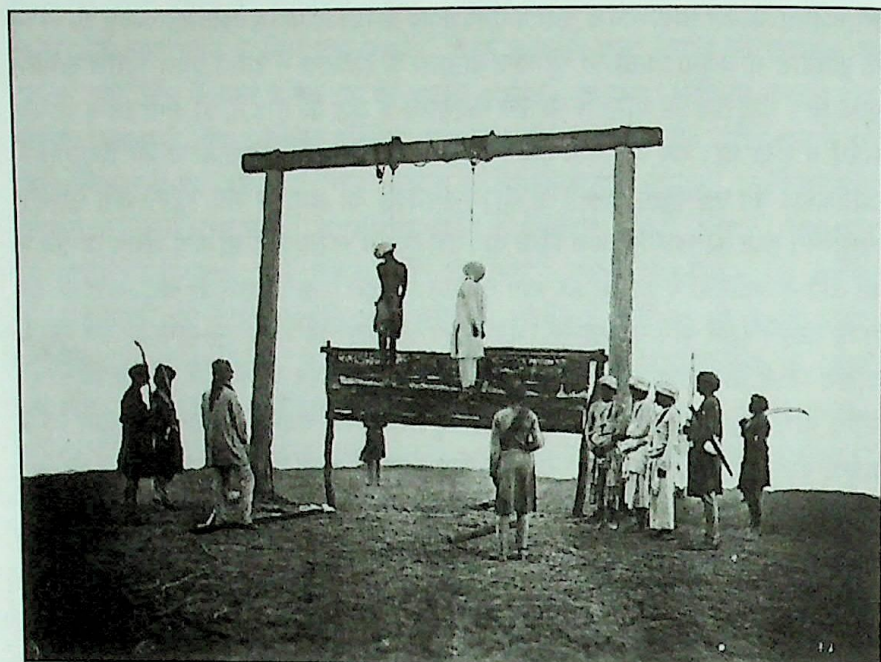
सन् 1857 के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम के 3वें नेटिव इन्फ्रेंट्री के दो भारतीय सिपाहियों की फाँसी की इतालवी–ब्रिटिश फोटोग्राफर फेलिस बीटो (Felice Beato : 1832-1909) द्वारा खींची गई दुर्लभ तस्वीर। अंग्रेज़ों द्वारा दिल्ली पर अधिकार के पश्चात् भारतीयों पर विजय के तौर पर उनसे भयानक बदला लिया। अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों की कहानियाँ अकथ्य हैं। किसी भी कैदी को बिना मुकदमा चलाए मनमाने ढंग से मौत की सजा दे दी जाती थी। विद्रोह के दोषी लोगों को या तो फांसी पर लटका दिया या तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा दिया गया। चित्र–सौजन्य : Victoria and Albert Museum, Museum number : 3219-1955

सन् 1857 के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ाए जाने का चित्र। 'Suppression of the Indian Revolt by the English' नामक यह विख्यात चित्र एक रूसी युद्ध–चित्रकार वसीली वेसिलेअवच वेरेशचागिन (Vasily Vasilyevich Vereshchagin : 1842-1904) ने 1884 में बनाया था। यह चित्र अंग्रेज शासकों द्वारा खरीदा गया और सम्भवतः इसे नष्ट कर डाला गया।
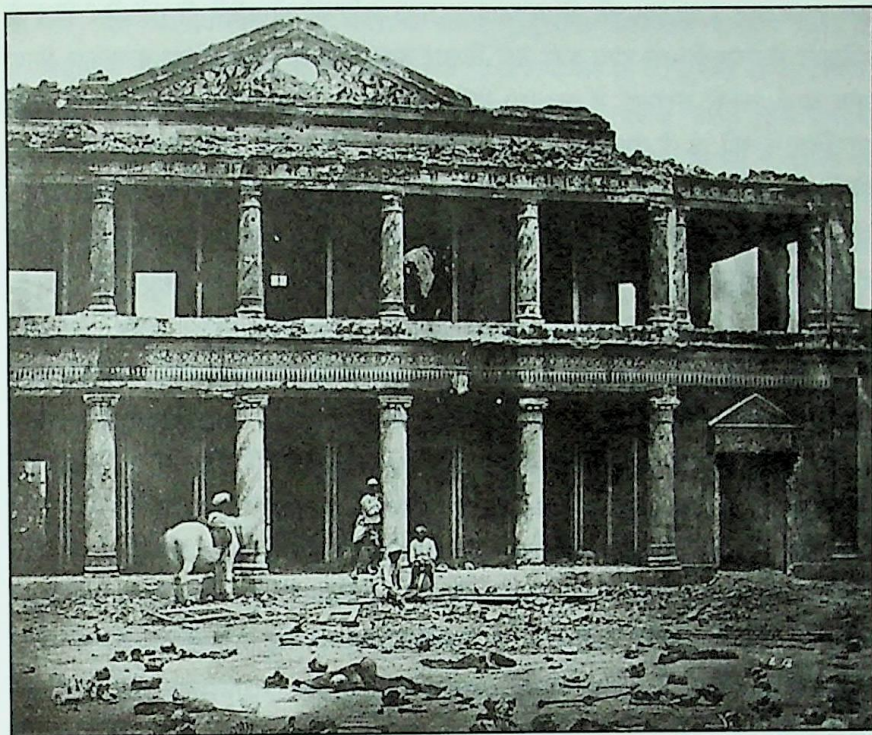
सन् 1857 में 93वें हाइलैण्डर्स एवं चतुर्थ पंजाब रेजिमेंट द्वारा 2,000 भारतीयों की हत्या के बाद लखनऊ के सिकन्दर बाग़ के भग्नावशेष के आन्तरिक दृश्य का फेलिस बीटो द्वारा 1858 में खींचा गया चित्र। नवम्बर, 1857 में सर कॉलिन कम्पबेल (1792–1863) द्वारा लखनऊ पर पहला हमला किया गया। चित्र में चारों तरफ नरकंकालों के ढेर पड़े हैं। चित्र–सौजन्य : Brown University, Special Collections, Anne S.K. Brown Military Collection, LL/6832

ब्रिटिश सैन्य चित्रकार ऑर्लेण्डो नूरी (Orlando Norie : 1832-1901) द्वारा 1858 में बनाया गया बंगाल हॉर्स आर्टिलरि द्वारा भारतीय स्वाधीनता सेनानियों को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ाए जाने का चित्र। चित्र–सौजन्य : नेशनल आर्मी म्यूज़ियम, लन्दन

उस समय कुल 1,52,000 थी, में 26,000-27,000 व्यक्तियों को फाँसी दी गई थी।[1] विश्व के इतिहास में ऐसा वीभत्स दृश्य कहीं नहीं दिखाई देता। अनेक कन्याओं का बलात्कार किया गया था।[2] अकेले लखनऊ में 20,270 व्यक्ति शहीद हुए थे।[3] हज़ारों गाँव भारत के भावी मानचित्र में नहीं रहे थे तथा पूर्णतः नष्ट कर दिए गए थे। अनेक नगर नष्ट हो गए थे तथा क़िले खण्डहर हो गए थे। सम्पूर्ण देश एक युद्धक्षेत्र बन गया था। यह एक ऐसा संघर्ष था जो एक दिन में बीस-बीस स्थानों पर एकसाथ लड़ा गया था। यह संघर्ष 12 महीने से भी अधिक समय तक चला था।[4]

इस महासंघर्ष ने अंग्रेज़ों की विश्वविजयी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया था। 23-वर्षीय वीर सावरकर (1883-1966)[5] ने ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में लगभग 1,500 ग्रन्थों का अध्ययन करके लिखा था– 'उस क्रान्ति-युद्ध में केवल दो-तीन वर्षों के घनघोर संग्राम में अंग्रेज़ों की इतनी भयानक हानि हुई कि हिंदुस्थान के साम्राज्य के लिए मराठे, सिख और नेपाली– तीनों के साथ युद्धों में उतने ब्रिटिश सैनिक मारे न गए होंगे, जितने ब्रिटिश सैनिकों और गोरों की इन क्रान्तिकारियों ने (1857 के युद्ध में) बली ले ली। भारतीय उग्रवाद के इतिहास का प्रारम्भ गदर के समय से पाते हैं।'[6] अंग्रेज़ों के छोटे-मोटे कैप्टन, लेफ्टिनेंट, कलेक्टर, मजिस्ट्रेट आदि द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को तो छोड़ ही दें, जनरल वाईट, जनरल नील, सर हेनरी लॉरेंस (Sir Henry Montgomery Lawrence : 1823-1857), जनरल आउट्रम (Sir James Outram : 1819-1860), कमाण्डर-इन-चीफ एन्सन (George Anson : 1797-1857) आदि अंग्रेज़ों के अनेक धुरन्धर अधिकारी और नेतागण भी इस संग्राम में बलि चढ़ा दिए गये।[7] यह एक ऐसा संघर्ष था जो विश्व में 'अनुशासित' कही जानेवाली अंग्रेज़ सेना द्वारा भयंकर लूटमार तथा हिंसा के कारण उसी के सेनापति को मज़बूर होकर निःशस्त्र करना पड़ा था।[8]

---

1. बिपन चन्द्र, *आधुनिक भारत*, पृ० 179; सतीश चन्द्र मित्तल, *1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन*, पृ० 20-40
2. सौभाग्य मोहन कला, '1857 रिवोल्ट : ब्रिटिश इन्सर्जैन्सी', *ब्लिट्ज*, 19 फरवरी, 1968; जी०बी० मैलिशन, (पूर्वोद्धृत), भाग 2, पृ० 301; सेनापति निकोल्सन ने कहा था, 'दिल्ली में औरतों और बच्चों की खाल खींचने, सूली पर चढ़ा देने और ज़िन्दा जला देने का क़ानून बना देना चाहिये।'
3. रोशन तक़ी, *लखनऊ 1857 : द टू वार इन लखनऊ (द डस्ट ऑफ़ एन एरा)* (उद्धृत) 1857 : स्मृति संग्रहालय, लखनऊ रेसीडेंसी (लखनऊ, 2003), पृ० 24
4. कार्ल मार्क्स एवं एंगल्स, *द फर्स्ट इण्डियन वॉर ऑफ़ इण्डिपेंडेंस (1857-59)*, पृ० 172
5. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, धनञ्जय कीर, *सावरकर एण्ड हिज़ टाइम्स* (मुम्बई, 1950)
6. सुविमल चन्द्र सरकार एवं कालीकिंकर दत्त, *आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास*, भाग दो (प्रयाग, 1956), पृ० 245; इन्स, *ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, पृ० 328-29
7. विनायक दामोदर सावरकर, *भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ*, भाग तीन (लखनऊ, नवम संस्करण, 2007), पृ० 197
8. कार्ल मार्क्स एवं एंगल्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 132

यह आश्चर्यजनक है कि भारत के अनेक बुद्धिजीवी अंग्रेज़भक्त भाटों ने 1857 के महासंग्राम में अंग्रेज़ों के कृत्यों का यशोगान किया या अब भी कर रहे हैं। जबकि अनेक ब्रिटिश अधिकारियों तथा लेखकों ने इन कुकृत्यों की भर्त्सना की है।[1] फील्ड मार्शल लॉर्ड रॉबर्ट्स (Frederick Sleigh Roberts : 1832-1914), जो उन दिनों दिल्ली में ही था, ने अंग्रेज़ों के क्रूर अत्याचारों का वर्णन किया है।[2] पर्सिवल लन्दन (Perceval Landon : 1868-1927) ने ब्रिटिश सैनिकों तथा नागरिक अधिकारियों के क्रियाकलापों की कटु आलोचना की तथा बदले की भावना से अनेक अनजान लोगों पर अत्याचारों को ग़लत बताया।[3] हेनरी गिल्बर्ट (Henry Gilbert : 1868-1928) ने अवध के प्रति दुर्व्यवहार तथा घृणा की नीति अपनाने की कटु आलोचना की तथा अवध में इसका स्वरूप जन-प्रतिरोध बतलाया।[4] इसी भाँति एडवर्ड थॉम्प्सन (Edward John Thompson : 1886-1946) ने इस संघर्ष में ब्रिटिश सरकार के क्रूर अत्याचारों के वर्णन को एकपक्षीय तथा 'झूठी गवाहियों[5] पर आधारित' बतलाया। अपने ग्रन्थ को लिखते हुए इसे 'अपना प्रायश्चित'[6] बतलाया तथा आशा की कि इससे प्रत्येक व्यक्ति की अंग्रेज़ों के प्रति धारणा बदलेगी।[7] ब्रिटिश इतिहासकार एफ०डब्ल्यू० बकलेर (Francis William Buckler : 1891-1960) ने संघर्ष के क़ानूनी तथा राजनैतिक समीक्षा करते हुए उसने ब्रिटिश कम्पनी को विद्रोही बतलाया न कि मुग़ल-शासन को।[8]

संक्षेप में यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि 1857 के महासमर के प्रभावों तथा परिणामों को भारत तथा विश्व के सन्दर्भ में भारतीय जनजीवन तथा जनमानस से संबंधित आधारभूत सूत्रों— धार्मिक, सांस्कृतिक पक्ष[9] को अधिकतर विद्वानों ने या तो छोड़ दिया या जान-बूझकर उपेक्षा की। वर्तमान काल में तथाकथित सेक्युलरवादी लेखकों तथा वामपंथी इतिहासकारों को इसके वर्णन में साम्प्रदायिकता की बू आने लगी। उन्होंने इसके अकाट्य प्रमाणों की जान-बूझकर उपेक्षा की कि ब्रिटिश सरकार भारत को क्यों स्थायी देश न बना

---

1. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, सतीश चन्द्र मित्तल, *ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत* (नयी दिल्ली, 2010), देखें अध्याय 'ब्रिटिश इतिहासकार तथा 1857 का महासमर', पृ० 197-232
2. लॉर्ड रॉबर्ट्स, *फोर्टी वन ईयर्स इन इण्डिया* (लन्दन, 1896), पृ० 148
3. पर्सिवल लन्दन, *1857, इनकोमेमोरेशन ऑफ़ 50एथ एनिवर्सरी ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी* (लन्दन, 1907)
4. हेनरी गिल्बर्ट, *द स्टोरी ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी* (न्यूयॉर्क-लन्दन, 1916)
5. एडवर्ड जॉन थॉम्प्सन, *द अदर साइड ऑफ़ द मैडल* (लन्दन, 1925), पृ० 17
6. एस०सी० मित्तल, *इण्डिया डिस्टॉर्टेड : ए स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया*, भाग तीन (नयी दिल्ली, 1998), पृ० 456
7. एडवर्ड थॉम्प्सन, पूर्वोद्धृत (देखें प्रथम संस्करण की प्रस्तावना), पृ० 5
8. एफ०डब्ल्यू० बकलेर, 'द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी', *ट्रांसेक्शंस ऑफ़ द रॉयल हिस्टॉरिकल सोसायटी*, भाग पाँच (12 जनवरी, 1922 को रॉयल हिस्टॉरिकल सोसायटी, लन्दन में पठित लेख) (लन्दन, 1922), पृ० 71-100
9. सतीश चन्द्र मित्तल, *भारत का संक्षिप्त इतिहास*, नयी दिल्ली, 2014, पृ० 29-30

सकती जैसा कि उन्होंने पहले ऑस्ट्रेलिया तथा उत्तरी अफ्रीका में किया? 1857 के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना तथा जागरण समाप्त नहीं, इससे कैसे प्रारम्भ हुआ? आख़िर कब तक भारतीय इतिहासकार पाश्चात्य मानसिकता तथा ब्रिटिश भ्रामकता का शिकार बने रहेंगे?

क्रान्ति से ब्रिटेन में उथल-पुथल

सन् 1857 की महान् क्रान्ति ने विश्व को दो गुटों मे विभक्त कर दिया था अर्थात् ब्रिटेन तथा उसके समर्थक कुछ उपनिवेशों में तथा साम्राज्यवादी यातनाओं तथा कष्टों से पीड़ित देशों में। जहाँ यह संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व एवं विस्तार के लिए एक ख़तरा बन गया, वहाँ यह इटली, जर्मनी, फ्रांस, आयरलैण्ड, पुर्तगाल आदि यूरोपीय देशों के लिए विस्मय, कौतुहल का विषय बन गया। इंग्लैण्ड के सर्वोत्तम मस्तिष्क माने जानेवाले जेम्स मिल (James Mill : 1773-1836) के पुत्र जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill : 1806-1873) के द्वारा भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बचाने के लिए एक लम्बी-चौड़ी पेटीशन प्रस्तुत की गयी, परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अस्तित्व न बच सका। भारत एक ईसाई देश न बन सका। भारतीयों के सौभाग्य से वर्तमान में यह कम्पनी इंग्लैण्ड में एक भारतीय व्यापारी संजीव मेहता 15 अगस्त, 2010 से चला रहा है।[1]

तत्कालीन ब्रिटेन के प्रमुख राजनीतिज्ञों की इच्छानुसार भारत में अंग्रेज़ों का सीधा शासन स्थापित किया गया। तत्कालीन ब्रिटेन के उच्चतम अधिकारियों तथा जनता की मानसिकता का बोध सहज रूप से ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की कार्यवाहियों, मंत्रियों के वक्तव्यों, रानी विक्टोरिया की झुंझलाहट, इंग्लैण्ड के गिर्जाघरों में अचानक बढ़ती हुई भीड़ से सरकार द्वारा 'प्रार्थना सप्ताह' आदि के आयोजन की आज्ञाओं से ज्ञात होता है। ब्रिटेन के पक्ष-विपक्ष के नेताओं– लॉर्ड पार्मस्टन (Lord Palmerston : 1784-1865), लॉर्ड डिसरैली (Benjamin Disræli : 1804-1881), लॉर्ड एलेनबरो (Lord Ellenborough : 1790-1871), लॉर्ड डर्बी (Lord Derby), मैकाले (Thomas Babington Macaulay : 1800-1859) के ब्रिटिश संसद में निराशाजनक भाषणों, रानी के पत्रों, यहाँ तक कि ब्रिटेन के हित में ब्रिटिश बुर्जआ इतिहासकार कार्ल मार्क्स (Karl Marx : 1818-1883)[2] के तत्कालीन लेखों से इसकी भयंकरता तथा व्यापकता का एहसास होता है। उल्लेखनीय है कि विश्व के अनेक देशों के प्रमुख पत्रों की मुख्य सुर्खी पाँच महीनों (मई-सितम्बर, 1857) तक भारत का महासमर ही रही।

सन् 1857 की भयंकर क्रान्ति विश्व की दो-तिहाई भूमि पर कब्ज़ा किए यूरोप के लिए एक भयावह विस्फोट था।[3] इतना बड़ा विस्फोट यूरोप के किसी भी साम्राज्य के इतिहास में

---

1. विस्तार के लिए देखें : सतीश चन्द्र मित्तल, 'अब एक भारतीय के हाथ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी', *पाञ्चजन्य*, 08 मई, 2011
2. देखें बिपन चन्द्र, *कार्ल मार्क्स : हिज़ थ्योरीज़ ऑफ़ एंशियंट सोसायटीज़ एण्ड कोलोनियल रूल* (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), पृ० 105-107
3. ग्रोवर क्लार्क, *द बैलेन्स सीट्स ऑफ़ इम्पीरियलिज़्म* (न्यूयॉर्क, 1936), पृ० 5-6

इससे पूर्व न हुआ था।[1] 1870 में भी अकेले ब्रिटेन का व्यापार फ्रांस, जर्मनी एवं इटली के सम्मिलित व्यापार से भी अधिक तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से चार गुना से भी अधिक था।[2] ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भारत का उपनिवेश एक 'पावर हाऊस', 'ग्रेट ब्रिटेन का भविष्य' तथा 'पूर्व में शार्क का शानदार आधार' समझा जाता था। यह संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के लिए ख़तरे की घण्टी थी।

तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद में इंग्लैण्ड में दो राजनीतिज्ञ सर्वाधिक प्रभावी थे, जिनके प्रभाव से समकालीन देश-विदेश की राजनीति घूमती थी। इसमें प्रथम लॉर्ड पार्मस्टन था जो 1830 में प्रथम बार विदेश सचिव बना था तथा 1835-'65 तक अर्थात् अपनी मृत्यु तक अत्यधिक प्रभावी व्यक्ति था। व्यावहारिक रूप से वह राजनीतिज्ञ तानाशाह के समान था।[3] वह भी उस काल के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष आर०डी० मैंग्लेस (Ross Donnelly Mangles : 1857-1858) की भाँति भारत में ईसाइयत का प्रचार तथा प्रसार चाहता था। क्रान्ति के समय वह इंग्लेण्ड का प्रधानमंत्री तथा विहग दल का प्रमुख सदस्य था। इसी भाँति दूसरा प्रमुख व्यक्ति डिजरैली[4] था जो विपक्ष के नेता तथा टोरी पार्टी का प्रमुख नेता था। वह सभी विषयों पर प्रायः कटु आलोचक था। डिसरैली भारत में लॉर्ड डलहौज़ी (Lord Dalhousie : 1848-1856) की गोद लेने प्रथा की निषेध नीति के विरुद्ध था तथा ईसाई-मिशनरियों के कार्यों का विरोधी था, पर साथ ही वह भारतीयों के प्रति उच्च विचार न रखता था। परन्तु दोनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बारे में उसे प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन में मिलाने के पक्ष में थे। ब्रिटेन का जनसमाज सामान्यतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गतिविधियों के प्रति उदासीन था जो समय-समय पर उनके भ्रष्टाचार से कुपित भी रहता था। परन्तु उसे ब्रिटिश सरकार की नीतियों तथा गतिविधियों पर पूरा भरोसा तथा विश्वास था। सामान्यतः लोग इंग्लैण्ड की आन्तरिक नीतियों के प्रति अधिक जागरुक थे।

समकालीन ब्रिटिश समाचार-पत्रों में *द टाइम्स (The Times)* को सर्वाधिक विश्वसनीय माना जाता था यद्यपि व्यंग्य-साप्ताहिक *पंच (Punch)*, *द सैटरडे रिव्यू (The Saturday Review)*, *द स्पेक्टेटर (The Spectator)* आदि भी भारतीय समाचारों के प्रति

---

1. विलियम डेलरिम्पल, *द लास्ट मुग़ल : द फॉल ऑफ़ दिल्ली, 1857*; देखें डेलरिम्पल से प्रश्न तथा उत्तर, *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 31 अक्टूबर, 2006
2. डेविड थॉम्पसन, *इंग्लैण्ड इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी : 1815-1914* (प्रथम संस्करण 1950, संशोधित संस्करण : लन्दन, 1962), पृ० 92
3. जॉर्ज टाउनशेण्ड वॉर्नर एवं सी०एच०के० मार्टेन, *द ग्राउण्डवर्क ऑफ़ ब्रिटिश हिस्ट्री* (लन्दन, 1924), पृ० 623 : डब्ल्यू० वैरिंग पैमबर्टन, *लॉर्ड पार्मस्टन*
4. विशेषाध्ययन के लिए देखें : रॉबर्ट ब्लैक, *डिजरैली* ; शरह ब्रेडफोर्ड, *डिज़रेली*; सामान्यतः डिजरैली को एक गहरा गूढ़ व्यक्ति समझा जाता है जिसने उसकी शक्तियों को बढ़ा दिया था। विस्तार के लिए देखें : वार्नर एवं मार्टिन, पूर्वोद्धृत, पृ० 632

कुछ जागरुक थे। सामान्यतः यह माना जाता था कि 'यह देश (इंग्लैण्ड)' *द टाइम्स* द्वारा शासित है।'[1] 1857 की क्रान्ति मेरठ में 09 मई, शनिवार को शुरू हो गई थी। उन दिनों इंग्लैण्ड समाचार पहुँचने में कई सप्ताह लग जाते थे। भारत में हुई क्रान्ति या अंग्रेज़ों के अनुसार 'विद्रोह' समाचार को प्रारम्भ में न ही ब्रिटिश सरकार और न ब्रिटेन के जनसमाज ने गम्भीरता से लिया। परन्तु शीघ्र ही वस्तुस्थिति सामने आयी। इंग्लैण्ड ने इसे बहुत सनसनीपूर्ण, अविश्वसनीय तथा आश्चर्यजनक तथा घातक माना।[2] लॉर्ड मार्ले ने इसे अपने इतिहास की बहुत भयंकर घटनाएँ बतलाया। 09 जून, 1857 को लॉर्ड एलनबरो ने हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स (House of Lords) में तथा 29 जून को डिज़रैली ने हाउस ऑफ़ कॉमन्स (House of Commons) में इस सन्दर्भ में अपने विचार रखे तथा दोनों ने इसे 'एक महान् विपत्ति'[3] बतलाया। डिज़रैली ने पुनः 27 जुलाई को इसे 'राष्ट्रीय विद्रोह' कहा। लॉर्ड सैलिसबरी (Lord Salisbury : 1895-1902) ने भी इसे केवल सैनिक विद्रोह नहीं, बल्कि इससे कहीं अधिक माना। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में, ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड पार्मस्टन, जो स्वयं ईसाइयत का महत्त्वपूर्ण पोषक तथा प्रचारक था, ने भारत में व्याप्त विभिन्न तरीकों से ईसाइयत के प्रचार को स्वीकार किया। उसने भारत में सही ढंग से, पवित्र भाव से ईसाई पादरियों के प्रचार न करने को 'दैवीय पाप' (Divine Chastisement) भी कहा। विड्डा दल के प्रमुख विचारक, लेखक तथा भारत में रहे पहले ब्रिटिश क़ानून सदस्य लॉर्ड मैकाले ने इसे 'आत्मा को सर्वाधिक कचोटनेवाली घटना' बतलाया तथा कहा कि "मैं जीवनभर किसी भी घटना में उतना विचलित न हुआ जितना इससे।"[4] उसने अपना 57वाँ जन्मदिवस भी न मनाया। वस्तुतः वह 'विद्रोह' से बड़ा विचलित हुआ। यहाँ तक कि जब उसे 'पीयर' ('peerage') का पद देने की बात हो रही थी, उसके मस्तिष्क में दिल्ली तथा कानपुर में अग्रेज़ों की सामाजिक दुर्दशा घूम रही थी।[5] अनेक ने इसे महान् दुःखांत घटना माना है।[6] वास्तव में शीघ्र ही सम्पूर्ण इंग्लैण्ड इस महान् क्रान्ति से घबरा गया तथा अंग्रेज़ों को भारत में अपने अस्तित्व पर ख़तरा लगा।

सन् 1857 की क्रान्ति से शीघ्र ही इंग्लैण्ड के जनमानस में भय तथा आशंका व्याप्त हो गयी। ब्रिटिश सरकार तथा ईसाई-प्रचारकों ने जन के मनोबल को बनाए रखने के लिए विशेष आयोजन किये। उदाहरणतः 07 अक्टूबर, बुधवार, जो सरकारी कामकाज का दिन था,

---

1. केविन हॉब्सन का प्रसिद्ध लेख 'द ब्रिटिश प्रेस एण्ड द इण्डियन म्युटिनी', देखें वेबसाइट : www.britishempire.co.uk/
2. हर्मन ऑसबेल, *जॉन ब्राइट विक्टोरियन रिफॉर्मर* (यू०एस०ए०, 1966), पृ० 89
3. देखें : हन्सडर्ड (ब्रिटिश पार्लियामेंटरी डिबेट, तीसरी सीरिज़), 19 जून-जुलाई 1857
4. सर जॉर्ज ओट्टो ट्रेवेलियन, *द लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ़ लॉर्ड मैकॉले*, भाग दो (लन्दन, 1876), पृ० 447 : लॉर्ड मैकॉले की मानसिक अवस्था के लिए उसकी डायरी, 29 जून 1857, 25 अक्टूबर 1857, 27 अक्टूबर 1857, 11 नवम्बर 1957
5. *वही*, पृ० 437
6. जॉर्ज टाउनशेण्ड वॉर्नर एवं सी०एच०के० मार्टेन, *द ग्राउण्डवर्क ऑफ़ ब्रिटिश हिस्ट्री*, पृ० 692

सरकारी रूप से विनय, व्रत तथा प्रार्थना दिवस (Day of Humiliation, fast and Prayer) मनाया गया।[1] ब्रिटेन के सभी गिर्जाघरों मे उत्तम दिवस वर्षा तथा तूफ़ान की अवस्था में भी बड़ी संख्या में प्रार्थना की गयी। मैकाले-जैसा व्यक्ति, जो अपने को धर्म से अलग दर्शाता था, आँधी तथा तूफ़ानो में, बीमारी की अवस्था में अंग्रेज़ी राज्य की रक्षा के लिए प्रार्थना करने जाने लगा।[2] यह कहना ग़लत न होगा कि यदि जून, 1857 से आगामी पाँच मास (20 सितम्बर, 1857 तक) के ब्रिटेन में नित्य बढ़नेवाली भीड़ के आँकड़ों को खंगाला जाये तो निश्चय ही यह कई गुणा बढ़ गई होगी। फरवरी, 1858 में लॉर्ड एलेनबरो ने एक प्रस्ताव की ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में सूचना दी जिसका आशय था कि भारत में ब्रिटिश सरकार ने सिपाहियों को धर्म-परिवर्तन के लिए उकसाया तथा ऐसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया।[3] दिनांक 19 फरवरी, 1858 को लॉर्ड शेफ्ट्सबरी (Lord Shaftesbury : 1801-1885) ने भी इस आशय की पैटीशन की थी।[4] लॉर्ड डिज़रैली ने भारतीय धर्म पर इसे आघात बतलाया। कुछ वर्तमान इतिहासकारों ने भी भारत में इस ज़ोर-ज़बर्दस्ती से ईसाइकरण की कटु आलोचना की है।[5]

जहाँ तक ब्रिटिश समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं का प्रश्न है, प्रारम्भ में ब्रिटेन के सर्वप्रमुख पत्र *द टाइम्स*[6] ने प्रधानमंत्री पार्मस्टन की भाषा में भारत में किसी प्रकार के संघर्ष या टकराव की सम्भावनाओं को स्वीकार न किया। *द सैटरडे रिव्यू*-जैसे पत्र ने भी उसका समर्थन किया। इसके साथ ही उसने कम्पनी के जॉन काल्विन, हेनरी तथा जॉन लारेंस के सैनिक नेताओं के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की।[7] *द स्पेक्टेरर*[8] ने ब्रिटेन की पूर्णतः टकराव में विजय का विश्वास मानते हुए शीघ्र ही 14,000 ब्रिटिश सेनाओं का भारत भेजने का आग्रह किया, उसके साथ ही भारत में प्रशासन में सुधारों की माँग की। उपर्युक्त पत्र के अधिकतर विचार डिज़रैली की सोच से मिलते-जुलते थे। ब्रिटेन के *पंच* ने सर्वप्रथम 11 जुलाई, 1857 के अंक में विद्रोह (upiring) की बात कही।[9]

पंच की चेतावनी को प्रायः सभी समाचार-पत्रों ने गम्भीरता से लिया, *द स्पेक्टेटर* ने भारत में स्वराज शासन-व्यवस्था को इसकी कुञ्जी बतलाया तथा कम्पनी और यहाँ के ब्रिटिश

---

1. सलाउद्दीन मलिक़, 'द पंजाब एण्ड इण्डियन म्युटिनी', *ज़र्नल ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री* (त्रिवेन्द्रम), भाग एल, पार्ट दो, अगस्त, 1972, पृ० 344
2. सर जॉर्ज ओट्टो ट्रेवेलियन, *द लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ़ लॉर्ड मैकॉले*, भाग दो, पृ० 446
3. *वही*, भाग दो, पृ० 441
4. *वही*, भाग दो, पृ० 442
5. विलियम डेलरिम्पल, 'द ज़िहाद ऑफ़ 1857', *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 05 नवम्बर, 2006; वी०ए० स्मिथ, *ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, पृ० 93, 709, 732
6. *द टाइम्स*, 04 जुलाई, 1857
7. देखें : *द सैटरडे रिव्यू*, उद्धृत केविन हॉब्सन, पूर्वोद्धृत
8. *द स्पेक्टेरर*, उद्धृत केविन हॉब्सन, पूर्वोद्धृत
9. *पंच*, 11 जुलाई, 1857
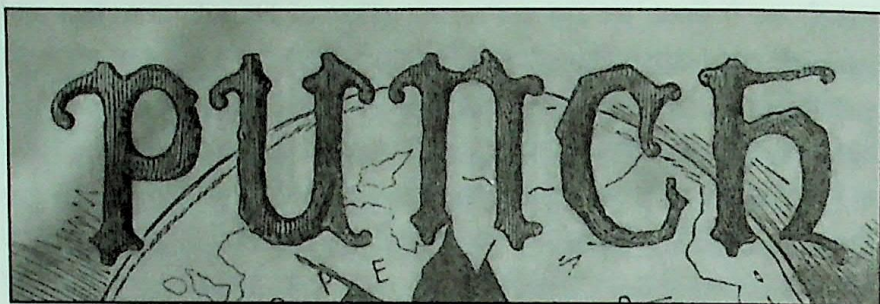
PUNCH

लन्दन के प्रसिद्ध व्यंग्य–साप्ताहिक *पंच* *(Punch)* के 1857 अंक

The Spectator

FOR THE

No. 1509.] WEEK ENDING SATURDAY, MAY 30, 1857. [UNSTAMPED 8d. STAMPED .. 9d.
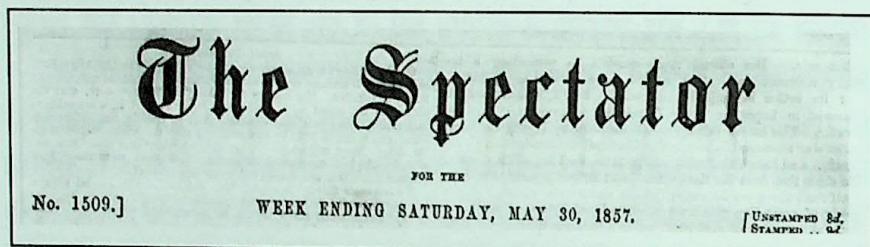
लन्दन से प्रकाशित अंग्रेजी–दैनिक द स्पेक्टेरर *(The Spectaror)* का 30 मई, 1857 का अंक
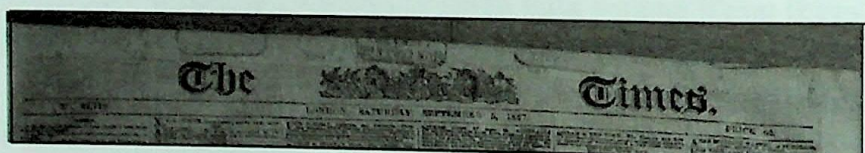
The Times.

लन्दन से प्रकाशित अंग्रेजी–दैनिक द *टाइम्स* *(The Times)* का 05 सितम्बर, 1857 का अंक

THE
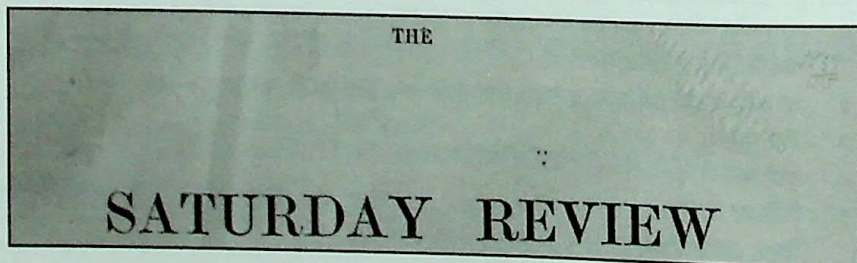
SATURDAY REVIEW

लन्दन से प्रकाशित अंग्रेजी–साप्ताहिक द *सैटरर्ड रिव्यू* *(The Saturday Review)* का अंक

22 अगस्त, 1857 को *पंच* (लन्दन) के पृ० 76–77 पर प्रकाशित इस विख्यात व्यंग्य–चित्र "The British Lion's Vengeance on the Bengal Tiger" में ब्रिटेन शेर द्वारा बंगाल टाइगर (भारत) पर आक्रमण करते हुए दिखाया गया है। यही चित्र 17 अक्टूबर, 1857 को *हार्पर्स वीकली* (न्यूयॉर्क) में भी प्रकाशित हुआ था। चित्र–सौजन्य : *पंच* (22 अगस्त, 1857)

12 सितम्बर, 1857 को *पंच* (लन्दन) में प्रकाशित इस विख्यात व्यंग्य–चित्र "Justice" में ब्रिटेन की महारानी द्वारा ीयों का दमन करते हुए दिखाया गया है। चित्र–सौजन्य : *पंच* (12 सितम्बर, 1857)

THE RED-TAPE SERPENT—SIR COLIN'S GREATEST DIFFICULTY IN INDIA.

17 अक्टूबर, 1857 को *पंच* (लन्दन) के पृ० 161 पर प्रकाशित विख्यात व्यंग्य–चित्र "The Red-Tape Serpent — Sir Colin's Greatest Difficulty in India" में भारत में ब्रिटिश जनरल सर कॉलिन कम्पबेल की सबसे बड़ी कठिनाई दिखाया गया है। यह व्यंग्य–चित्र विख्यात ब्रिटिश व्यंग्य–चित्रकार जॉन लीच (John Leech : 1817-1864) ने बनाया था। चित्र–सौजन्य : *पंच* (17 अक्टूबर, 1857 ई०)

अधिकारियों को उत्तरदायी बतलाया तथा साथ ही मेरठ तथा दिल्ली में घटित घटनाओं का वर्णन भी किया। 18 जुलाई के *द सैटरडे रिव्यू* के अंक से ज्ञात होता है कि अब उसने भी कड़ा रुख अपनाया। पत्र ने अब भी पार्मस्टन की विजय की भावी सफलता की कामना करते हुए लिखा कि 'समस्त उत्तर-पश्चिम आग में झुलस रहा है' (the whole of north-western is in a blaze)[1]

तेजी से बिगड़ी परिस्थितियों से न केवल पार्मस्टन ने सर कॉलिन कैम्पबैल (Field Marshal Colin Campbell : 1792-1863) को भारत की सेनाओं का कमाण्डर बनाया बल्कि अतिरिक्त सेना भी भेजी। तत्कालीन स्थिति को रानी विक्टोरिया तथा प्रिंस कन्सर्ट अल्बर्ट (Prince Albert of Saxe-Coburg and Gotha : 1840-1861) को ब्रिटिश सुरक्षा की कमज़ोरी ध्यान में आयी। रानी ने अपने पार्मस्टन को लिखे पत्र[2] में परिस्थिति को नाजुक (moment a critical one) कहा तथा इस गम्भीर विनाश (serious disasters) कहा। उसने भारत में वास्तव में एक निपुण सेना भेजने को लिखा। शीघ्र ही इस 'युद्ध' से ब्रिटिश जनमानस में उत्तेजना तथा भय बढ़ता गया तथा 20 सितम्बर तक जबतक ब्रिटिश सेनाओं ने दिल्ली पर अधिकार न कर लिया, तब तक यह निरन्तर बढ़ता गया। एक समकालीन ब्रिटिश विद्वान्[3] ने बढ़ा-चढ़ाकर लिखा : 'अपने काल में, सम्भवतः किसी भी काल में, भारत के विद्रोह की पहली बार पूरी कहानी इंग्लैण्ड में आयी। ये भयानक अप्राकृतिक ही नहीं, अतिशयोक्तिपूर्ण थी।' 'इंग्लैण्ड यहाँ की महिलाओं तथा बच्चों के नृशंस हत्याकाण्ड की कहानियों, घिनौनी यातनाओं तथा अंग्रेज़ों की गृहिणियों तथा कुमारियों पर निम्न स्तर के अत्याचारों से घबरा गया था।'

संक्षेप में उपर्युक्त अतिशयोक्तिपूर्ण, अतिरंजित घटनाएँ न केवल क्रान्ति के दौरान, अपितु आगे भी ब्रिटिश मनों को झकझोरती रहीं। यह क्रान्ति में भारत में भावी गवर्नर जनरलों– लॉर्ड केंनिग (Lord Canning : 1856-1862) से कर्जन (Lord Curzon : 1899-1905) तक तथा मिन्टो (Lord Minto : 1905-1910) से लॉर्ड माउन्टबेटन (Lord Mountbatten : 1947-1948) को एक प्रेतच्छाया की तरह घेरती रही। भारत के वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो (Lord Linlithgow : 1936-1943) को 1942 का आन्दोलन भी 1857 के विद्रोह जैसा लगा था। यद्यपि भारत में अंग्रेज़ों का प्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया, तथापि डॉ० आर०सी० मजूमदार (1888-1980) ने सत्य ही लिखा कि जीवित जूलियस सीजर के स्थान पर मृत सीजर अधिक शक्तिशाली था। यह क्रान्ति के अगले दस वर्षों के भारत के वायसरायों तथा

---

1. *द सैटरडे रिव्यू,* 18 जुलाई, 1857
2. रानी विक्टोरिया का प्रधानमंत्री पार्मस्टन को पत्र (18 जुलाई, 1861), देखें : *लैटर्स ऑफ़ क्वीन विक्टोरिया : 1837-1861*, भाग तीन (लन्दन, 1907)
3. जस्टिन मैकर्थी, *ए हिस्ट्री ऑफ़ अवर टाइम्स* (1881)

भारतमंत्रियों के परस्पर पत्र-व्यवहार से ज्ञात होता है।[1]

सन् 1857 की क्रान्ति ने अंग्रेज़ों तथा भारतीय संबंधों में एक ऐसी खटास पैदा की जिसे दोनों देश आगामी नब्बे वर्षों (1857-'47) तक भूल न पाये। अंग्रेज़ों की भारतीयों के प्रति घिनौनी, नस्लीय भेदभाव, फूट डालो और राज करो तथा बदले की भावना चलती रही। राजभक्तों को पुरस्कार तथा देशभक्तों को दुत्कार की नीति अपनाई गयी। स्थान-स्थान पर क़त्ल-ए-आम, कोर्ट मार्शल किए गये। इस काल (1857-'58) में बंगाल में 1,954, मुम्बई में 1,213 और मद्रास में 1,044 कोर्ट मार्शल किए गये।[2] हज़ारों को निष्कासित किया गया। हज़ारों व्यक्तियों को बेमियाद समय के लिए बन्दी बनाया गया। उदाहरण के लिए मुसई सिंह, उत्तरप्रदेश, मिर्ज़ापुर की कोड तहसली के एक परगने भदोही को, 50 वर्ष बाद मई, 1907 ई० में जेल से छोड़ा गया।[3] कितने शहीद हुए या मारे गए, इसका निश्चित ब्यौरा उपलब्ध नहीं है।

साथ ही यह भी सत्य है कि समूचे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रयासों के पश्चात् भी भारत न ही ईसाई देश बना और न ही अंग्रेज़ों की स्थायी कॉलोनी ही। 1857 से भारत का सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यथार्थ में यह आन्दोलन 1885 में अंग्रेज़ राजभक्त ए०ओ० ह्यूम (Allan Octavian Hume : 1829-1912) के द्वारा काँग्रेस की स्थापना से न हुआ था तथा जिसकी इतिश्री 1947 के भारत विभाजन से हुई।

सन् 1857 की क्रान्ति के कारण बदलती हुई नवीन परिस्थितियों ने पुरानी सोच को भी बदला। यदि सूक्ष्मता से अध्ययन करें तो यह लगता है कि पहले ब्रिटिश विद्वानों तथा लेखकों के चिन्तन का केन्द्रीय विषय भारत न होकर आंग्ल सैक्सन की प्रगति तथा उत्तरोत्तर इसके विकास का वर्धन था, जो अब बदलकर 1857 की क्रान्ति बन गया था। इसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुख्य लक्ष्य भारत में राज्य-विस्तार तथा भारत को एक ईसाई देश बनाना था, परन्तु अब केवल प्रशासन की देखभाल तथा सुधार हो गया। ईसाईकरण की प्रक्रिया गौण हो गई तथा सामाजिक वर्णन भी सीमित हो गया।[4]

यूरोप में भारतीय क्रान्ति का प्रभाव

सन् 1857 की भारतीय क्रान्ति ने न केवल ब्रिटिश साम्राज्य एवं उसके उपनिवेशों में हलचल मचा दी, बल्कि समूचे यूरोप में एक नवचेतना तथा जागरण की लहर पैदा की। इसमें सर्वप्रथम स्थान फ्रांस का आता है। यूरोपीय इतिहास में फ्रांस की राजनैतिक तथा आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता

---

1. देखें : सर्वपल्ली गोपाल, *ब्रिटिश पॉलिसी इन इण्डिया : 1885-1905* (मद्रास, 1975)
2. देखें : ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स, 1859, सेशन दो, भाग 23, पृ० 467, ईस्ट इण्डिया कोर्ट मार्शल
3. मोहन शेटे, मुसाई सिंह, *1857 के स्वातन्त्र्य युद्ध का अन्दमान का अन्तिम बन्दी* (अनु०) डॉ० सुभाष तोषणीकल (पुणे, 2007); डॉ० वी०डी० दिवेकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 405-412 : देखें परिशिष्ट 1
4. टी०सी०पी० स्पीयर, *ब्रिटिश हिस्टोरिकल रायटिंग्स इन द एरा ऑफ़ द नेशनलिस्ट्स मूवमेंट* (उद्धृत, क्रिल हेनरी फिलिप्स (सं०) *हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड सिलोन* (लन्दन, 1961), पृ० 407

सर्वज्ञात है। कष्टों के दिनों में दोनों साथ-साथ भी रहे। 1857 की क्रान्ति का समाचार इंग्लैण्ड से पूर्व फ्रांस पहुँचा। फ्रांस के प्रेस ने भारतीय सिपाहियों के असन्तोष का कारण उनकी धार्मिक भावनाएँ बतलाया था। इसको पढ़कर इंग्लैण्ड के प्रमुख पत्र *द टाइम्स* ने प्रधानमंत्री के स्वर में, उलटे फ्रांस के प्रेस की कटु आलोचना की। *द टाइम्स* ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए फ्रांस के प्रति आक्रामक रुख अपनाते हुए कहा कि फ्रांस न भूले कि गत वर्षों में इंग्लैण्ड ने फ्रांस को अनेक देशों में उसकी भूमि के टुकड़ों को फ्रांसीसी साम्राज्य में मिलाने से खदेड़ दिया था।[1] साथ ही *द टाइम्स* ने फ्रांस के कथन को ग़लत बतलाते हुए लिखा कि इस 'विद्रोह' में जनता शामिल नहीं है।[2] यह केवल शेष समाज से कटा एक अलग से सैनिक विद्रोह है। इसी तरह के विचार *द सैटरडे रिव्यू* ने भी व्यक्त किए थे। चार्ल्स फोरनेन के एक लेख के अनुसार फ्रांसीसी प्रेस ने 1857 के विद्रोह पर अधिक ध्यान दिया।

फ्रांस के दैनिक पत्र *ली सीशल (Le Siècle)* (The Age) को प्रायः अंग्रेज़ों का समर्थक समझा जाता था, परन्तु उसने भी इसे एक विशिष्ट घटना बताया तथा अंग्रेज़ों की बर्बरतापूर्वक कार्रवाई की निन्दा की। उसने अपने 09 सितम्बर, 1857 के अंक में लिखा, 'भारत में क्रान्ति ही अकेली बड़ी घटना है जिसपर इस समय सबका ध्यान केन्द्रित है।' फ्रांस के एक अन्य समाचार-पत्र ने लिखा कि यदि अंग्रेज़ बर्बरता की नीति पर अड़े रहेंगे तो बड़ी शक्तियाँ, विशेष रूप से फ्रांस को हस्तक्षेप करना पड़ेगा।'[3]

फ्रांस के प्रमुख पत्रों ने खुलकर अंग्रेज़ी शासन की भर्त्सना की तथा भारत के स्वाधीनता संघर्ष तथा क्रान्ति का समर्थन किया। इस सन्दर्भ कुछ पत्रों की प्रतिक्रिया जाननी महत्त्वपूर्ण होगी। एक अन्य पत्र *रिव्यू डेस डेक्स मोण्डेस (Revue des deux Mondes)* ने भारत में अंग्रेज़ों के कठोर दमन-चक्र के बारे में लिखा, 'अंग्रेज़ों ने भारत को एक विशाल कारागार बना दिया था जिसमें सब तरफ़ फाँसी के फन्दे व बलिवेदियाँ बिखरी पड़ी हैं।' *रिव्यू डी पेरिस (Revue de Paris)* ने लिखा, 'भारत में ब्रिटिश सत्ता ढह रही है और इससे पूरा तुर्की गद्‌गद है। वस्तुतः पूरा पूरब इंग्लैण्ड की भर्त्सना कर रहा है।' इसी भाँति *ले एस्ट फेटे* ने 27 अगस्त, 1857 को लिखा, 'फ्रांस को हस्तक्षेप करना ही होगा, ताकि भारतीयों का जंगली जानवरों की तरह क़त्ल-ए-आम न होने पावे।' *ल यूनियन* ने अंग्रेज़ों की आलोचना करते हुए लिखा कि 'इस क्रान्ति से ग्रेट ब्रिटेन पिछले पचास वर्ष से विश्व-राजनीति पर जिस तरह से हावी रहा है, उसका यह रुतबा निश्चित रूप से बहुत घटा है।' *ले एस्ट फेटे* ने अपने अंकों में इसे 'राष्ट्रवाद का व्यापक उभार', 'देशभक्ति और धर्म की दोहरी प्रेरणा' बतलाया तथा 11 सितम्बर, 1857 के अंक में लिखा, 'हमारी सहानुभूति भारतीयों के साथ है, क्योंकि मातृभूमि

---

1. *द टाइम्स*, 04 जुलाई, 1857
2. *वही*
3. *गगनांचल* (भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की पत्रिका), नयी दिल्ली, नवम्बर, 2006

Le Siècle.

MERCREDI 9 SEPTEMBRE 1857

पेरिस से प्रकाशित फ्रेंच–दैनिक *ली सीशल (Le Siècle)* का 09 सितम्बर, 1857 का अंक

REVUE

DES
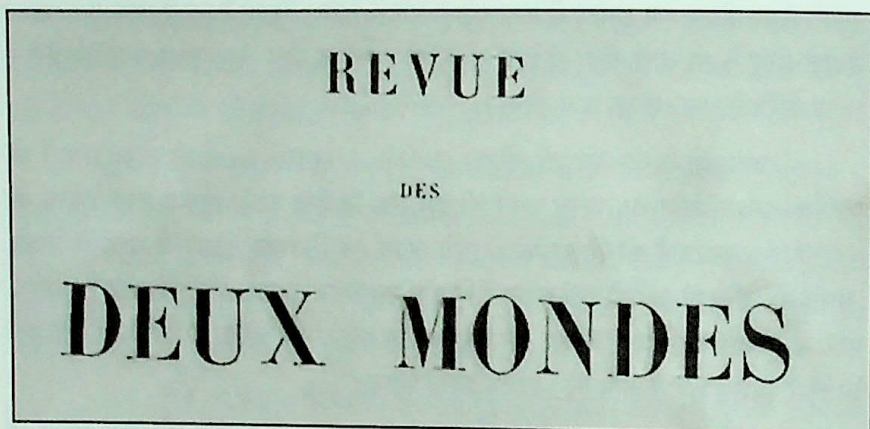
DEUX MONDES

पेरिस से प्रकाशित फ्रेंच–मासिक *रिव्यू डेस डेक्स मोण्डेस (Revue des deux Mondes)* का 1857 का अंक

REVUE

DE PARIS

1ER JUILLET 1857
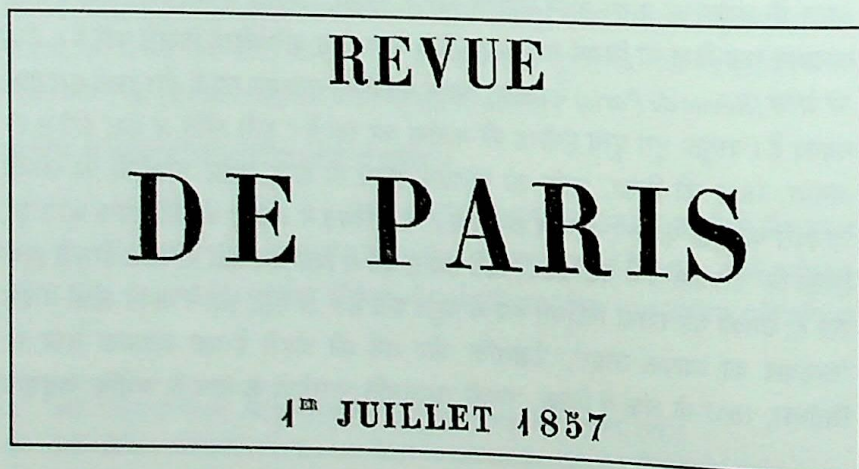
पेरिस से प्रकाशित फ्रेंच–मासिक *रिव्यू डी पेरिस (Revue de Paris)* का जुलाई, 1857 अंक

और राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रेम को हम भी बहुत पवित्र मानते हैं।'

परन्तु शीघ्र ही क्रान्ति की व्यापकता, भयंकरता तथा भारतीयों के सामूहिक प्रतिरोध ने इंग्लैण्ड तथा फ्रांस को एक दूसरे के निकट ला दिया। शीघ्र ही फ्रांसीसियों को भारत-स्थित पाण्डिचेरी में स्थानीय फ्रांसीसी अधिकारियों को ख़तरा तथा भय लगा। तत्कालीन दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि वहाँ का गवर्नर ड्यूरेण्ड डी उबराए (Alexandre Durand d'Ubraye : 1857-1863) ने तत्कालीन मद्रास की ब्रिटिश सरकार से, अर्थात् अंग्रेज़ गवर्नर हेरिस (George Francis Robert Harris : 1854-1859) से अपने क्षेत्र के यूरोपीयों की रक्षा के लिए सहायता मांगी।[1] उसने कुछ शस्त्रों की मांग की। 29 जून, 1857 को ब्रिटिश सरकार के आदेश से 200-300 फौज़ी बन्दूकें, 100-150 हथगोले, कारतूसों के डिब्बे, कुछ तलवारें तथा कुछ टोप भेजे गए थे।[2]

परन्तु दूरगामी परिणामों की दृष्टि से यह कहना पड़ेगा कि ब्रिटेन तथा फ्रांस के संबंध अच्छे न रहे। भारत में फ्रांसीसी बस्ती पाण्डिचेरी[3], विश्व की एक आध्यात्मिक नगरी के रूप में विकसित हुई। भारत के अनेक क्रान्तिकारियों की आश्रय-स्थली बनी तथा स्वाधीनता से पूर्व भारतीय राष्ट्रवाद और भारतीय देशभक्तों की प्रेरणा-स्थली बनी।

पुर्तगाल

सन् 1857 की क्रान्ति से पुर्तगाल साम्राज्य को धक्का लगा। 19वीं शताब्दी के मध्य में भारत में स्थित पुर्तगाली बस्तियों में बड़ी बेचैनी फैली हुई थी। गोवा के पुर्तगाली गवर्नर ने वहाँ के लोगों पर अनेक प्रकार के कर तथा अमानुषिक क़ानून लाद दिए थे। उनके सामाजिक जीवन को दूभर बना दिया था। उदाहरणतः पुरुषों को पाजामा तथा महिलाओं को ब्लाउज़ पहनने के लिए बाध्य किया जाता था जो सामान्यतः जनसाधारण की पोशाक न थी। पोशाक-निरीक्षण के बहाने कुछ पुर्तगाली सिपाहियों ने महिलाओं का सतीत्व हरण कर लिया था। अतः तंग आकर 26 जनवरी, 1852 को दीपूजी राणा के नेतृत्व में संघर्ष हुआ। वस्तुतः दीपू जी राणा ने पहले ही 1857 के टकराव की भूमिका बना दी थी। पुर्तगाली सिपाहियों को सत्तारी महल से खदेड़ दिया गया। दीपू की सेना ने स्वेपम, कनकोना, हेमाद्र, वारशे और माटग्राम पुर्तगालियों से मुक्त कर लिये। फरवरी, 1855 में दीपू जी राणा की गिरफ्तारी के लिए पुर्तगाली सरकार ने 1,500 रुपये का इनाम घोषित किया था। 02 जून, 1855 को दीपू जी राणा व पुर्तगाली अधिकारियों के बीच

---

1. सतीश चन्द्र मित्तल, *1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन*, पृ० 44
2. *वही*, पृ० 44
3. पाण्डिचेरी के विकास में फ्रांसीसी योगदान के लिए देखें : एच०एच० डॉडवेल, *डूप्ले एण्ड क्लाइव : द बिगिनिंग ऑफ़ एम्पायर* (गोरखपुर-संस्करण, 1962), पृ० 3; डब्ल्यू०एच० देवनपोर्ट, *एपीसोड्स ऑफ़ एंग्लो-इण्डियन हिस्ट्री* (लन्दन, 1872), पृ० 11

एक सन्धि हुई। राजनीतिक क्षमादान दिया गया, पर शीघ्र ही गतिरोध हो गया।[1] मई, 1857 से दीपू जी राणा ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दीं। तत्कालीन पुर्तगाली रिकार्ड्स से ज्ञात होता है कि 1857 की क्रान्ति की लपटें गोवा क्षेत्र में भी फैल गई थीं।[2] तत्कालीन स्थानीय सरकार ने लिस्बन से सैनिक मदद भेजने की माँग की थी। 05 अगस्त, 1857 की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि स्थानीय अधिकारियों ने लिखा, 'गोवा में पुर्तगाली शासन पाताल में पहुँचने की कगार पर है। ब्रिटिश सरकार के लोग यूरोप से फौज़ें बुलाकर इस संकट का मुक़ाबला कर रहे हैं, लेकिन गोवा में एक भी (यूरोपीय) पुर्तगाली सिपाही नहीं आया और गोवा में दलों का 9/10 भाग स्थानीय व्यक्तियों की भर्ती से निर्मित है, अतः यदि पड़ोसी ब्रिटिश क्षेत्र में विद्रोह भड़कता है, तो दूसरे दिन यह सत्तारी तक फैल जायेगा और तीसरे दिन यह समस्त गोवा को निगल जायेगा। अतः उसने लिस्बन के अधिकारियों से प्रार्थना की कि कुछ यूरोपीय सैनिक दल तुरन्त भेजे जायें।'[3] 22 अगस्त को स्थानीय अधिकारियों ने पुनः लिखा कि भारत में अपनी नयी विद्रोही सफलताओं के समाचारों से साहस पाकर दीपू जी राणा और उसके अनुयायी स्वयं तैयारी कर रहे हैं और यह है कि यदि विद्रोह भड़कना प्रारम्भ होता है, वह नहीं जानता कि किस प्रकार पुर्तगाली सरकार रोक सकेगी।[4]

तत्कालीन भारत में मद्रास के ब्रिटिश अधिकारियों के परस्पर पत्र-व्यवहार से भी ज्ञात होता है कि किस प्रकार दीपू जी राणा का प्रभाव भारत के पुर्तगाली तथा ब्रिटिश क्षेत्र में तेजी से बढ़ रहा था। सितम्बर, 1858 में दीपू जी राणा के लिए 10,000/- रुपये का अभिवृद्धित पुरस्कार पुर्तगाल सरकार ने घोषित किया था। अन्त में सभी ओर से घिर जाने पर अपने साथियों सहित दीपू जी राणा ने अक्टूबर, 1858 स्वयं को पुर्तगाली सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था।[5] 1859 के अंत तक गोवा में स्वातन्त्र्य के लिए संघर्ष चलता रहा। गोवा में आज भी दीपू जी राणा को लोकगीतों के रूप में गाया जाता है। स्वतंत्रता का यह संघर्ष आगे भी चलता रहा था। दीपू जी राणा के एक अनुयायी दादे राणा को पुर्तगाली सरकार ने पकड़कर देश-निर्वासनकर एक पुर्तगाली कॉलोनी मौज़म्बीक (Mozambique, Southeast Africa) भेज दिया था।[6]

---

1. विस्तार के लिए देखें : वा०द० दिवेकर, *1857 का स्वाधीनता संग्राम : दक्षिण भारत का योगदान* (अनु०) डॉ० कैलास शंकर कुलश्रेष्ठ (आगरा, 2001), पृ० 47-55
2. कोरसपोंडेशिया पेरा ए रेटेनो 1857-58 एच०ए०जी०एच०एस० 21वीं, 23वीं : (उद्धृत) शिरोडकर, *पश्चिम भारत में गदर और पुर्तगाली*, पृ० 816
3. *वही*, 41वीं, 42वीं
4. *वही*, पृ० 50
5. (उद्धृत) मद्रास (वर्तमान तमिलनाडु) न्यायिक प्रक्रिया परामर्श, सं० 67-68, 12 अक्टूबर, 1858 एस०एम०सी० फौज़ी विभाग, पृ० 50 (उद्धृत) वा०दा० दिवेकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 50
6. *वही*, पृ० 51

इटली

सामान्यतः यूरोपीय इतिहास में इटली के एकीकरण में कावूर (Camillo Benso, Count of Cavour : 1810-1861) की कूटनीतिज्ञ, जोसेफ मैजिनी (Giuseppe Mazzini : 1805-1872) की राष्ट्रीयता की भावनाओं तथा गैरीबाल्डी (Giuseppe Garibaldi : 1807-1882) की देश के सैन्यीकरण की नीति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। जहाँ कावूर को राजनीतिक दक्षता के कारण प्रायः 'इटली का बिस्मार्क' कहा जाता, वहाँ मैजिनी को उत्तरी तथा मध्य इटली तथा गैरीबाल्डी को दक्षिण इटली के प्रदेशों में देशभक्ति की भावनाओं में प्रमुख माना जाता था। मैजिनी को देश की युवाशक्ति पर अटूट विश्वास था। वह प्रायः कहता था, "विद्रोही जनता का नेतृत्व नवयुवकों के हाथों में होना चाहिए आप इन युवक-हृदयों में छिपी हुई शक्ति का भेद नहीं जानते।"[1] गैरीबाल्डी अपने अद्भुत साहस, वीरत्व तथा सैन्य संचालन में पटु था।

सन् 1857 की क्रान्ति से जहाँ इनमें, विशेषकर गैरीबाल्डी तथा मैजिनी ने ज़ोश, देशभक्ति तथा स्वतंत्रता के लिए प्रेरणा ली, वहाँ वे भारत के भावी राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रान्तिकारियों के मार्गदर्शन तथा प्रेरक बन गये थे। 2005 में नयी दिल्ली में आयोजित एक सेमिनार में इटली के पेरुगिया विश्वविद्यालय (University of Perugia) के प्रो० रोमेनो उगोलिनी (Prof. Romano Ugolini) ने इटालियन रेजिमिन्टों एवं भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष को 'वाकदवृंद का संचालक' कहा था।[2] 1857 की क्रान्ति के समय यह सामान्य विश्वास तथा प्रचार था कि गैरीबाल्डी स्वयं भारत आ रहा है।[3] यह चर्चा इसलिए प्रचलित थी क्योंकि गैरीबाल्डी ने विभिन्न स्थानों पर– 1834 में सेवाय, 1834-'48 दक्षिण अमेरीका के कई युद्धों, 1848 में पोप के विरुद्ध, 1859 में जेनेवा तथा सिसली आदि संघर्षों में स्वयं भाग लिया था। अतः उसे 'स्वाधीनता का वितरक' ('Distributor of Freedom') भी कहा जाता था जिसका विश्व में कहीं भी स्थान पूर्ति करनेवाला व्यक्ति न था।[4] ऐसा माना जाता है कि उसने जलपोत में अपना सामान भी लाद दिया था, परन्तु अचानक इटली में विद्रोह होने तथा इस समाचार से कि भारत में संघर्ष समाप्त हो गया है, उसे भारी मन से अपना सामान जलपोत से

---

1. सी०डी० हैजन, *मॉडर्न यूरोप अप टू 1945*, पृ० 225
2. देखें प्रो० रोमेनी उगूलीनी का शोध-पत्र 'गैरीबाल्डी एज़ आर्चेस्टरी कण्डक्टर : द नीनीस एण्ड इवेल्युशन ऑफ़ हिज़ आइडियल्स' (नयी दिल्ली में 16 फरवरी, 2004 को 'इटेलियन रेज़िमेंटो इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल एण्ड द परसूट्स ऑफ़ ह्यूमन लिबर्टी (सेमिनार में उद्धृत) प्रो० गीता श्रीवास्तव के लेख 'इण्डियन हिस्टोरियोग्राफ़ी ऑन गैरीबाल्डी : एन अनालिसस' लेख में)
3. ईश्वरी प्रसाद एवं एस०के० सूबेदार, *हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया : 1740-1950* (इलाहाबाद, 1951), पृ० 245-246; प्रो० रोमेनी उगूलीनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 4
4. देखें प्रो० रोमेनी उगूलीनी का शोध-पत्र 'गैरीबाल्डी एज़ आर्चेस्टरी कण्डक्टर : द नीनीस एण्ड इवेल्युशन ऑफ़ हिज़ आइडियल्स', पृ० 4

उतारना पड़ा।[1]

गैरीबाल्डी की भाँति मैजिनी को भी भारत की स्वाधीनता तथा क्रान्ति के प्रति गहरी रुचि थी। इस सन्दर्भ में मैजिनी ने 17 अगस्त, 1857 से 18 दिसम्बर, 1857 तक अपना निर्वासित जीवन लन्दन में बिताया। उसने इस काल में भारत की क्रान्ति के बारे में 23 लेख लिखे जो अपने दैनिक पत्र *इटालिया डेल पोपोलो (L'Italia del popolo)* (इटली की जनता) में प्रकाशित किये। इन लेखों में उसने भारत की क्रान्ति का विस्तार, स्वरूप तथा प्रभाव का विस्तृत वर्णन किया। वह भारत की क्रान्ति को 'राष्ट्रीय विद्रोह' बतलाता है। 17 अगस्त, 1857 के अंक में उसने लिखा कि इस विद्रोह ने एक झटके में ही ब्रिटिश साम्राज्य को चरमरा दिया। यह विद्रोह आकस्मिक न होकर पूर्व नियोजित था। सम्भवतः मैजिनी ने इन लेखों के माध्यम से इटली में स्वाधीनता तथा जागरण की भावना को जगाया था।[2]

इटली की अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने भी इंग्लैण्ड के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। एक अन्य पत्र *कालो कटलोनिया* ने लिखा, 'गुलाम की ज़ंजीरों में जकड़ा ब्राह्मण फिर सम्राट् बनेगा और अबतक स्वामी को दास की स्थिति में ला देगा।' मैड्रिड (स्पेन) से प्रकाशित द्विमासिक पत्रिका *रिविस्ता कन्टम्पोरिनिया (Revista Contemporánea)* ने जुलाई, 1857 के अंक में लिखा, 'यह सिपाही विद्रोह शुद्ध रूप से सैनिक-क्रान्ति है, जिसकी चिनगारी ब्राह्मणों की धार्मिक कट्टरता ने लगायी थी।' इसी भाँति *ला रेजिओन (La Ragione)* (The Reason) ने 15 अगस्त, 1857 को लिखा, 'हम उस दिन का बहुत आनन्द से स्वागत करेंगे जब भारत, स्वाधीनता के ढोंग रचनेवाले इंग्लैण्ड के शासन से मुक्त होगा।' 05 सितम्बर, 1857 को इस पत्र ने पुनः लिखा, 'दुःखी और उत्पीड़ित भारतीय अपनी गुलामी की ज़ंज़ीरों को हमेशा के लिए तोड़ देना चाहते हैं। हमारी हार्दिक इच्छा है कि अंग्रेज़ जाति को भारत से सदा सर्वदा के लिए खदेड़ दिया जाए।'

यह भी उल्लेखनीय है कि क्रान्ति के मुख्य नायक नाना साहिब ने अपने मित्र तथा सचिव अज़ीमुल्ला ख़ाँ (1830-1859) को इटली भी भेजा था, जहाँ से वह एक प्रिन्टिंग प्रेस लेकर आए थे। इस प्रेस पर उस समय का मुख्य अख़बार *'प्यासे आज़ादी'* छपता था। इटली की यात्रा में अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने गैरीबाल्डी से भी भेंट की थी। इस सन्दर्भ में अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने अपनी डायरी में लिखा कि गैरीबाल्डी ने भारत के प्रति सहानुभूति जताई तथा अपनी सेना द्वारा भारत का सहायता का वायदा भी किया।[3] भारत के राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रान्तिकारियों के लिए

---

1. सुन्दरलाल, *भारत में अंग्रेज़ी राज*, भाग तीन, पृ० 1384
2. गीता श्रीवास्तव, *मेजिनी एण्ड हिज़ इम्पैक्ट ऑन द इण्डियन नेशनल मूवमेंट* (इलाहाबाद, 1982), पृ० 195 (हिंदी में भी प्रकाशित, नयी दिल्ली, 2005)
3. अज़ीमुल्ला ख़ाँ की डायरी (उद्धृत), गीता श्रीवास्तव, 'इण्डियन हिस्टोरियोग्राफ़ी ऑन गैरीबाल्डी : एन एनालिसस'

L'ITALIA DEL POPOLO

GIORNALE POLITICO QUOTIDIANO

Libertà — Unità

Anno I. — Venerdì 4 Dicembre 1857.

मिलान (रोम) से प्रकाशित दैनिक पत्र *इटालिया डेल पोपोलो (L'Italia del popolo)* का 04 दिसम्बर, 1857 का अंक

REVISTA CONTEMPORÁNEA
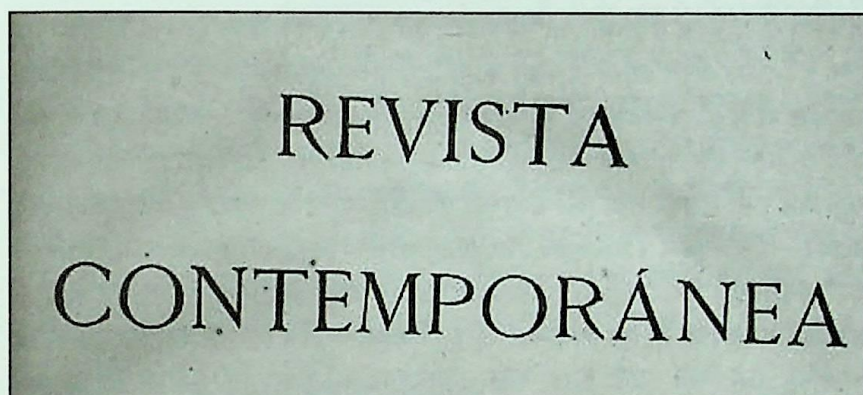
मैड्रिड (स्पेन) से प्रकाशित *रिविस्ता कन्टम्पोरिनिया (Revista Contemporánea)* का अंक

LA RAGIONE

ORGANO DI DIFESA DELLA ITALIANITA'

contro i vili, i camorristi, i sicari, i falsari e gli austriacanti, nemici della patria di origine e di quella d'adozione.

फिलाडेल्फिया (अमेरिका) से प्रकाशित इतालवी दैनिक ला जेजिओन *(La Ragione)* का अंक

गैरीबाल्डी का जीवन तथा मेजिनी का साहित्य एवं लेख सदैव दिशाबोधक रहे। देश के अनेक नेताओं ने उनके आधार पर ग्रन्थ लिखे तथा उनके साहित्य तथा जीवन को अपने मुख्य लेखों तथा भाषणों का आधार बनाया। इसमें कुछ प्रमुख नेता हैं– सर्वश्री लाला लातपत राय, बालगंगाधर तिलक, श्रीअरविन्द, विनायक दामोदर सावरकर एवं सुभाष चन्द्र बोस। उनकी जीवनियों तथा रचनाओं की गणना क्रान्किारी साहित्य में होने लगी।

रूस

नाना साहिब के वक़ील बनकर अज़ीमुल्ला ख़ाँ उनकी पेंशन की बहाली के लिए इंग्लैण्ड गए थे, पर उन्हें सफलता न मिली थी। वापसी में उन्होंने तुर्की, रूस तथा मिस्र देशों की यात्रा भी की थी। उस समय रूस में जार अलेक्ज़ेंडर द्वितीय (Alexander II : 1855-1881) का शासन था। रूस के इतिहास में सुधारों का समय इसी शासक के राजगद्दी पर बैठने से प्रारम्भ माना जाता है।[1] उसने अपने शासन के प्रथम दस वर्षों में अनेक सुधार-कार्य किए थे। इसमें शिक्षा तथा प्रेस पर से प्रतिबन्ध भी हटा दिए गए थे। इन्हीं दिनों क्रान्तिकारी अज़ीमुल्ला ख़ाँ भी वहाँ पहुँचे थे, परन्तु इस सन्दर्भ में कोई विवरण प्राप्त नहीं है। परन्तु 1857 की क्रान्ति के बारे में तत्कालीन रूसी लेखकों तथा पत्रों से उनकी प्रतिक्रिया जानी जा सकती है। तत्कालीन रूसी लेखकों– दोब्रोल्यूबोव (Nikolay Alexandrovich Dobrolyubov : 1836-1861) तथा चर्निशेवस्की (Nikolay Gavrilovich Chernyshevsky : 1828-1889) ने भारत में अंग्रेज़ों द्वारा किए जा रहे क्रूर अत्याचारों की कटु आलोचना की है। उन्होंने भारत में अंग्रेज़ों का 'राजकीय तथा निजी स्वार्थ' माना, न कि सभ्यता का प्रसार बतलाया है।[2] उन्होंने भारत में अंग्रेज़ी शासन को संगीनों के साये में बतलाया।[3] चेर्निशेवस्की ने पुनः लिखा, 'भारत में किसान कितना भी कमरतोड़ मेहनत क्यों न करे, फिर भी वह ग़रीब का ग़रीब बना रहता है। ग़रीब के खाने में जितना भी वह पैदा करता है, उसे ज़मीन्दार, तालुकेदार आदि छीन लेते हैं।[4] उक्त दोनों विद्वानों ने भारत में विद्रोह को 'ऐतिहासिक आवश्यकता'[5] बतलाया है। एक रूसी अख़बार *वेस्तनीक (Vestnik)* ने लिखा, 'पूरे यूरोप की आँखें पिछले पाँच महीनों से भारत पर ही लगी हैं।' एक दूसरे पत्र *जापिस्का* ने लिखा, 'राजनीतिक विश्व के लिए इस समय भारत से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा विषय है ही नहीं।

इन दिनों इंग्लैण्ड में बैठे कार्ल मार्क्स और उसके मित्र फ्रेडरिक एंगेल्स (Friedrich Engels : 1820-1895) ने भी भारत के इस महान् संघर्ष के बारे में लगभग दो दर्जन लेख

---

1. ई० लिप्सन, *यूरोप इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी : एन आउटलाइन हिस्ट्री*, पृ० 93
2. निकोलाई अलेक्ज़ेंड्रोविच दोब्रोलियोबोव, *द इण्डियन नेशनल अपराजिंग ऑफ़ 1857 : ए कंटंपररी रशियन एकाउंट* (मूल रूसी भाषा से अनुवाद एच०सी० गुप्ता, कलकत्ता, 1988)
3. (उद्धृत), एरिक कोमोरोव, *लेनिन एण्ड इण्डिया : ए हिस्टॉरिकल स्टडी* (मास्को, 1975), पृ० 7
4. *वही*, पृ० 7
5. *वही*, पृ० 7

लिखे जो जुलाई, 1857 से अक्टूबर, 1858 के मध्य *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (New-York Daily Tribune)* में प्रकाशित हुए। ये लेख बाद में सोवियत सरकार द्वारा *द फर्स्ट इण्डियन वार ऑफ़ इण्डिपेंडेंस, 1857-1859 (The First Indian War of Independence, 1857-1859)* शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित किए गये।[1] यह सही है कि मार्क्स ने अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक तथा ध्वंसात्मक कार्यों की कटु आलोचना की, परन्तु पुस्तक के शीर्षक के अनुरूप कहीं भी मार्क्स ने न इसे 'प्रथम' और न ही 'स्वाधीनता का युद्ध' कहा। प्रायः प्रत्येक लेख में 'इण्डियन म्युटिनी' ('Indian mutiny') शब्द का प्रयोग किया गया और स्वाधीनता के प्रहरियों को सदैव 'विद्रोही'[2] कहकर पुकारा। पुस्तक में संघर्ष के घटनाक्रम को पढ़ने से इसमें अंग्रेज़ों के प्रति पूर्ण सहानुभूति दिखलाई देती है।[3] कहीं भी भारतीय भावनाओं का समर्थन नहीं है। अतः कुछ वामपंथी भारतीय इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया कि उसके लेख बुर्जुआ लिबरल पार्टी के समर्थन में लिखे गए थे।[4] उल्लेखनीय है कि जब ब्रिटिश पार्लियामेंट में टोरी पार्टी के नेता डिज़रैली ने 1857 के संघर्ष को 'राष्ट्रीय विद्रोह' कहा, तो दर्शकों की गैलरी में बैठे हुए कार्ल मार्क्स को बुरा लगा और अपने लेख में इसके विरोध में लिखा था। संक्षेप में उपर्युक्त विचार रूसी लेखकों में इंग्लैण्ड में बैठे हुए कार्ल मार्क्स के मतों में भिन्नता लगती है। वस्तुतः 1959 में प्रकाशित यह पुस्तक सोवियत रूस में मनमाने ढंग से इतिहास को बदलने तथा उनकी मानसिकता को प्रकट करती है जो भारत की बदलती हुई परिस्थिति की उपज है। देश के कई प्रसिद्ध विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार के लेख कभी लिखे ही नहीं गये।[5] परन्तु कुछ मार्क्सवादी इतिहासकार इसे मार्क्स के पवित्र वचन के रूप में स्वीकार करते हैं।[6]

अमेरिका में भारत की क्रान्ति का प्रभाव

सन् 1857 की क्रान्ति की गूँज ने न केवल यूरोपीय प्रमुख देशों को प्रभावित किया बल्कि यह शीघ्र ही सुदूर अमेरिका के तटों तक पहुँच गयी। यद्यपि भारत-अमेरिका के संबंध प्राचीन हैं परन्तु वर्तमान में 18वीं शताब्दी (1785 ई०) से सीधे व्यापारिक संबंध[7] तथा 19वीं शताब्दी से

---

1. कार्ल मार्क्स एवं एंगल्स, *द फर्स्ट इण्डियन वॉर ऑफ़ इण्डिपेंडेंस (1857-59)* (मास्को, 1959)
2. *वही*, पृ० 38, 39, 40, 41, 74, 83, 92, 174, 175
3. *वही*, पृ० 11, 37, 40, 41, 49, 50, 85, 86, 89
4. विपन चन्द्र, *कार्ल मार्क्स : हिज़ थ्योरीज़ ऑफ़ एंशियंट सोसायटीज़ एण्ड कोलोनियल रूल* (नयी दिल्ली, जे०एन०यू०, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), पृ० 105-107
5. देखें : देवेन्द्र स्वरूप, *डिड मास्को प्ले फ्रॉड ऑन मार्क्स ?* (दिल्ली, 2008)
6. देखें : इरफान हबीब का लेख 'मार्क्स एण्ड इंगल्स ऑन द रिवोल्ट ऑफ़ 1857', *पीपुल्स डेमोक्रेसी*, 25 फरवरी, 2007
7. डॉ० आर०सी० जौहरी, *अमेरिकन डिप्लोमेशी एण्ड इंडीपेंडेंस फॉर इण्डिया : 1941-1945* (मुम्बई, 1970), पृ० 2

New-York Tribune.

Vol. XVIII....No. 5,448. NEW-YORK, THURSDAY OCTOBER 7, 1858. PRICE TWO CENTS.

न्यूयॉर्क से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (New-York Daily Tribune)* का 07 अक्टूबर, 1858 का अंक

New-York Daily Times.
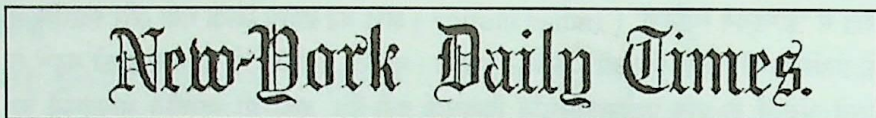
न्यूयॉर्क से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक *न्यूयॉर्क डेली टाइम्स (New-York Daily Times)* का अंक

THE BROOKLYN DAILY EAGLE.

VOL. 16. NO 164. BROOKLYN, MONDAY JULY 27, 1857. ONE CENT.

ब्रुकलिन (न्यूयॉर्क) से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक द *ब्रुकलिन डेली ईगल (The Broocklyn Daily Eagle)* का 27 जुलाई, 1857 का अंक
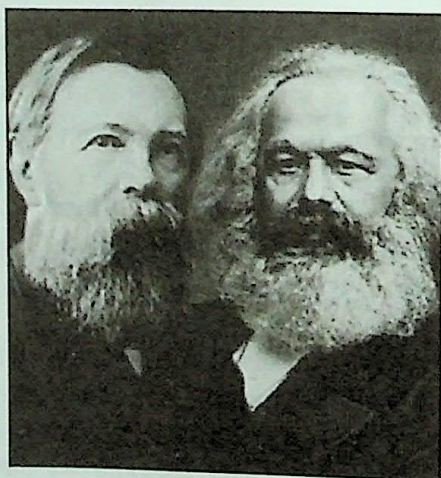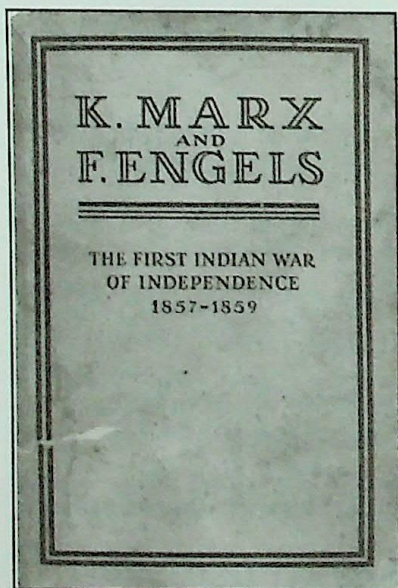
कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा भारतीय स्वाधीनता संग्राम पर लिखे लेखों के संग्रह : *The First Indian War of Independence, 1857-1859* का 1959 में प्रकाशित द्वितीय संस्करण का आवरण–पृष्ठ

THE

ATLANTIC MONTHLY,

Devoted to Literature, Art, and Politics.

NOVEMBER, 1857.

बोस्टन से प्रकाशित अंग्रेजी–मासिक द *अटलांटिक मन्थली (The Atlantic Monthly)* का नवम्बर, 1857 अंक

THE

LADIES' REPOSITORY:

सिनसिनाटी (अमेरिका) से प्रकाशित अंग्रेजी–मासिक द *लेडीज़ रिपोसिटरी (The Ladies Repository)* का नवम्बर, 1857 अंक

HARPER'S

NEW MONTHLY MAGAZINE.

No. XCI.—DECEMBER, 1857.—Vol. XVI.

ब्रॉडवे (न्यूयॉर्क) से प्रकाशित अंग्रेजी–मासिक *हार्पर्स न्यू मन्थली मैगजीन (Harpers's New Monthly Magazine)* का दिसम्बर, 1857 अंक

LIBERTY WEEKLY TRIBUNE.

मिसौरी (अमेरिका) से प्रकाशित अंग्रेजी–साप्ताहिक *लिबर्टी वीकली ट्रिब्यून (Liberty Weekly Tribune)* का 30 अक्टूबर, 1857 अंक

NEW ENGLANDER

AND

YALE REVIEW.

न्यू हैवेन (अमेरिका) से प्रकाशित अग्रेजी–पाक्षिक *न्यू इग्लैण्डर एण्ड येल रिव्यू (New Englander and Yale Review)* का अंक

ST. LOUIS CHRISTIAN ADVOCATE.

ST. LOUIS THURSDAY, AUGUST 20, 1857.

सेंट लुई (अमेरिका) से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक *सेंट लुई क्रिश्चियन एडवोकेट (St. Louis Christian Advocate)* का 20 अगस्त, 1857 का अंक

THE

UNITED STATES

DEMOCRATIC REVIEW.

न्यूयॉर्क से प्रकाशित अंग्रेजी–मासिक द *युनाइटेड स्टेट्स डेमोक्रेटिक रिव्यू (St. Louis Christian Advocate)* का जुलाई, 1857 का अंक
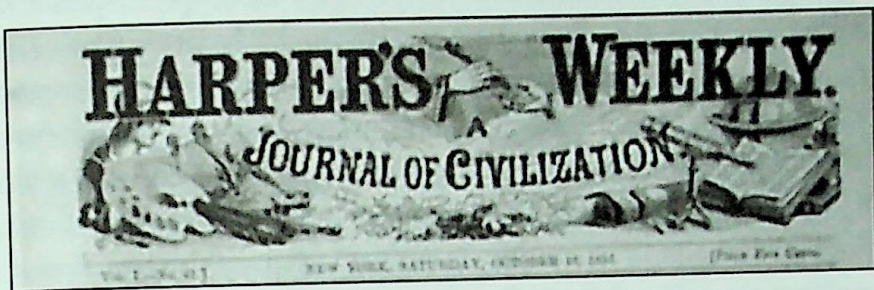
न्यूयॉर्क (अमेरिका) से प्रकाशित अंग्रेजी–साप्ताहिक *हार्पर्स वीकली* (*Harper's Weekly*) का 10 अक्टूबर, 1857 का अंक
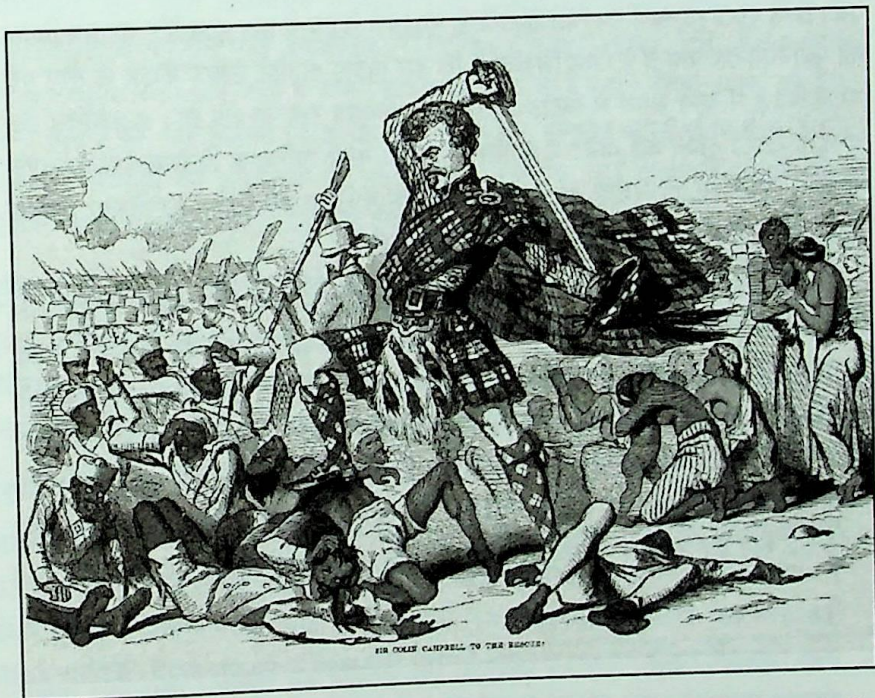
17 अक्टूबर, 1857 को *हार्पर्स वीकली* में प्रकाशित इस व्यंग्य–चित्र "Sir Colin Campbell to the Rescue!" में ब्रिटिश जनरल सर कॉलिन कैम्पबेल को भारतीय नागरिकों का दमन करते हुए दिखाया जा रहा है।

अमेरिकी मिशनरियों तथा बुद्धिजीवियों से जुड़े रहे हैं।[1] 1847 में रिचर्ड हो (Richard March Hoe : 1812-1886) द्वारा निर्मित छपाई की रोटरी मशीन ने प्रकाशन की प्रक्रिया में क्रान्ति ला दी और समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं का अमेरिकी जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया था।[2] अमेरिका की तीन प्रमुख दैनिक पत्रों– 1. *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून,* 2. *न्यूयॉर्क डेली टाइम्स (New York Daily Times)* तथा 3. *द ब्रुकलिन डेली ईगल (The Brooklyn Daily Eagle)* ने 1857 की क्रान्ति के सन्दर्भ में विपुल सामग्री प्रकाशित की थी। *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून,* जिसका वितरण लगभग दो लाख था, में मार्क्स एवं इंगल्स के तथाकथित लेख छपे थे।[3] *न्यूयॉर्क डेली टाइम्स* मुख्यतः भारत में ब्रिटिश सरकार तथा ईसाई-मिशनरियों के पक्ष में था। अतः उसने प्रारम्भ से ही क्रान्ति के दमन की बात की थी। 06 जुलाई, 1857 को उसने लिखा, 'भारतीय साम्राज्य के एक साथ दो स्वामी नही हो सकते। ब्रिटेन को भारत में राजनैतिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से अपना शासन स्थापित करना होगा। अन्यथा विश्वासघाती और विद्रोही भारतीय उसे रौंद डालेगा।' 03 अगस्त 1857 को उसने पुनः लिखा, 'यह विशालतम विद्रोह है। यह विद्रोह अद्भुत है, न केवल साथ उठ खड़े होने के कारण, बल्कि इसलिये भी कि कितने विशाल क्षेत्र पर वह एकदम फैल गया है और हमें प्राप्त ताजे समाचारों तक, किस दृढ़ता के साथ वह ब्रिटिशशाही के मुक़ाबले मैदान में डटा हुआ है।' यह पत्र विद्रोह को पूर्वनियोजित मानता है। यह लिखता है कि इस विद्रोह के पीछे उखाड़ फेंकने के लिए पूरी बंगाल फौज़ में लम्बे समय से विद्रोह का षड्यन्त्र चुपचाप रचा जा रहा था। *द ब्रुकलिन डेली ईगल* ने यद्यपि अपने कई अंकों में क्रान्ति के नायक नाना साहिब के क्रियाकलापों का वर्णन किया है। इसने भी 27 जुलाई, 1857 को अपने अंक में लिखा कि 'विद्रोह का विस्तार डरावनी रफ़्तार से हो रहा है। 23 देशी रेजिमेण्ट उसमें कूद चुकी हैं।'

अमेरिका के अधिकतर पत्र-पत्रिकाओं की सहानुभूति भारत की क्रान्ति के साथ थी। *प्रिन्सटन रिव्यू* ने लिखा कि भारत में क्रान्ति ही इस पीढ़ी के लिए सबसे बड़ी घटना है, इसके भारत में ब्रिटिश सत्ता और ईसाइयत के भविष्य पर दूरगामी परिणाम होंगे। बोस्टन से प्रकाशित अंग्रेज़ी-मासिक *द अटलांटिक मन्थली (The Atlantic Monthly)* (1857) ने लिखा, 'भारत में ब्रिटिश सत्ता के इतिहास में पहली बार ब्रिटिशशाही को उसके भीतर से और उसके अपने प्रजाजनों की ओर से चुनौती मिली है और इसका एकमात्र कारण धर्मान्तरण और जातिभ्रष्ट होने का भय है।' बोस्टन से प्रकाशित एक अन्य अंग्रेज़ी-पाक्षिक *द नॉर्थ अमेरिकन*

---

1. डॉ० आर०सी० जौहरी, *अमेरिकन डिप्लोमेशी एण्ड इंडीपेंडेंस फॉर इण्डिया : 1941-1945* (मुम्बई, 1970), पृ० 3-8
2. डॉ० वुड ग्रे एवं डॉ० रिचर्ड हाफस्टेरर, *अमेरिकी इतिहास की रूपरेखा* (अनु०) डॉ० चन्द्रभूषण त्रिपाठी, पृ० 69
3. अमेरिका की पत्र-पत्रिकाओं में छपी सामग्री में विस्तार के लिए देखें डॉ० देवेन्द्र स्वरूप का लेख '1857 : यूरोप और अमेरिका की आँखों से', *पाञ्चजन्य,* 22 जुलाई, 2007

रिव्यू (The North American Review) ने क्रान्ति तथा क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति दिखालाते हुए कई लेख लिखे। 1858 के एक अंश में लिखा : 'भारत में ब्रिटिश सत्ता जड़ तक हिल गयी है और अभी ख़तरे से बाहर नहीं है......गवर्नर जनरल ने भारत में अंग्रेज़ी व देशी प्रेस को प्रतिबंधों की ज़ंजीरों से बाँध दिया है....इसके पीछे उनका वास्तविक डर है कि कहीं यूरोप और सभ्य विश्व को वास्तविकता का पता न चल जाये।' उक्त पत्र ने ब्रिटिश सरकार द्वारा विद्रोही सिपाहियों द्वारा अंग्रेज़ों पर अत्याचारों की अतिरंजित तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की आलोचना की तथा पत्र में आह्वान किया कि 'भावी इतिहासकारों को निःसन्देह इस पूरे मामले को इस दृष्टि से देखना होगा।' इतना ही नहीं, सिनसिनाटी (Cincinnati, Ohio, USA) से प्रकाशित एक महिला पत्रिका *द लेडीज़ रिपोजीटरी (The Ladies' Repository)* ने क्रान्ति की प्रमुख नायिका वीर लक्ष्मीबाई की बड़ी प्रशंसा की है।

1857 की क्रान्ति के बारे में अमेरिका के अन्य पत्रों, जैसे– *हार्पर्स न्यू मन्थली मैगज़ीन (Harper's New Monthly Magazine)*, *लिबर्टी वीकली ट्रिब्यून (Liberty Weekly Tribune)*, *न्यू इंग्लैण्डर एण्ड येल रिव्यू (New Englander and Yale Review)*, *सेंट लुईस क्रिश्चियन एडवोकेट (St. Louis Christian Advocate)*, *द यूनाइटेड स्टेट्स मैगज़ीन एण्ड डेमोक्रेटिक रिव्यू (The United States Magazine and Democratic Review)* आदि ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। डॉ० देवेन्द्र स्वरूप का यह कथन सत्य है कि 'यह कितनी लज्जा की बात है कि हम भारतीय अपने इतिहास के इतने महत्त्वपूर्ण अध्यायों की शताब्दियों-डेढ़-शताब्दियों के नाम पर कुछ दिखावटी तमाशे और ज़ोशीले भाषण करके ही अपनी पीठ ठोंक लेते हैं।'[1]

एशिया में 1857 की क्रान्ति का प्रभाव

यूरोप, अमेरिका की भाँति एशिया 1857 की महान् क्रान्ति के प्रभाव से अछूता न था। भारतीय क्रान्ति की ज्वाला ने शीघ्र ही अपने पड़ोसी देशों तथा एशिया के कुछ भागों में गर्मी ला दी थी। इनमें से कुछ प्रमुख देशों के साथ संक्षेप में तथा प्रभाव जानना आवश्यक है।

ईरान (फ़ारस)

भारत तथा ईरान के संबंध अति प्राचीन काल से रहे हैं। मुग़ल काल में भी सम्राट् अकबर (1556-1605) ने कंधार पर विजय प्राप्त की थी, परन्तु जहाँगीर (1605-1627) के काल में कंधार मुग़लों के हाथ से निकल गया था। शाहजहाँ (1628-1958), औरंगजेब (1658-1707) तथा अन्य निर्बल मुग़ल-शासकों के काल में ये निरन्तर कमज़ोर होते गए थे। क्रान्तिकारी नाना साहिब ने इस दिशा में प्रयत्न अवश्य किए थे। बहादुरशाह द्वितीय ज़फर के मुग़ल-शहंशाह

---

1. अमेरिका की पत्र-पत्रिकाओं में छपी सामग्री में विस्तार के लिए देखें डॉ० देवेन्द्र स्वरूप का लेख '1857 : यूरोप और अमेरिका की आँखों से', *पाञ्चजन्य*, 22 जुलाई, 2007

बनने की घोषणा से ईरान के तत्कालीन शाह के साथ सम्पर्क तथा पत्र-व्यवहार किया गया था। दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि बहादुरशाह ने उससे सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश की थी।[1] उसने सिद्दी कम्बर को बातचीत बातचीत के लिए भेजा था तथा तथा सहायता की माँग की थी। तत्कालीन ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस घटना का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। इसे अंग्रेजों के विरुद्ध गहरा षड्यन्त्र बताया था। जे०डब्ल्यू० केयी ने यद्यपि बहादुरशाह को एक झूठा[2], 'ठिठोलिया शासक' (Mock majesty)[3] तथा 'एक सुविधाजनक निरर्थक पदार्थ' (a convenient lumber)[4] कहा, पर वह मुग़ल-शासक को मुस्लिम समुदाय को एक जोड़नेवाली कड़ी तथा भारत में 'ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा के लिए ख़तरा' मानता था तथा इसे षड्यन्त्र के एक भाग के रूप में ईरान[5] के शासक से मुग़ल सम्राट् की सहायता की मांग को देखा था। जी०बी० मैलीशन ने अंग्रेज़ों को भारत से खदेड़ने के लिए बहादुरशाह ज़फर द्वारा ईरान के शाह से मदद की मांग की कड़ी आलोचना की है।[6]

वस्तुतः इस समय ईरान का शाह अफगानिस्तान के शासक दोस्त मुहम्मद से हैरात के प्रश्न पर उलझा हुआ था। एहसानुल्ला ख़ाँ के अनुसार मिर्ज़ा हैदर ने बादशाह को शिया बनाकर, ईरान के शाह से दोस्ती करने की सलाह दी। तथ्य यह है कि कारण कोई भी हो, ईरान के शाह ने न तो संतोषजनक उत्तर भेजा, न कोई मदद की।

अफ़ग़ानिस्तान

सामान्यतः अंग्रेज़ों के अफ़ग़ानिस्तान के साथ संबंध कभी सुखद न रहे तथा अफ़ग़ानिस्तान सदैव अंग्रेज़ों की कूटनीति का शिकार बना रहा।[7] परन्तु लॉर्ड ऑकलैण्ड के भारत में गवर्नर-जनरल के काल में प्रथम आंग्ल-अफ़ग़ान युद्ध (1839-'42) में विश्व के इतिहास में महानतम पराजय हुई थी, जे०डब्ल्यू० केयी के अनुसार 'इतिहास के पृष्ठों में इतनी बड़ी और ज़बर्दस्त असफलता का उल्लेख नहीं है। संसार के समूचे इतिहास में इतना शानदार और प्रभावोत्पादक सबक कहीं नहीं मिलता है।" युद्ध में सभी सैनिक मारे गये तथा इस दुःखद समाचार को सुनाने के लिए केवल एक व्यक्ति डॉ० ब्रायडन किसी प्रकार बचकर ज़लालाबाद पहुँच सका था। जे०डब्ल्यू० केयी ने स्वीकार किया है कि इस पराजय से भारतीय सिपाहियों ने

---

1. सुरेन्द्र नाथ सेन, *1857* (नयी दिल्ली, 1957)
2. जे०डब्ल्यू० केयी, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द सेपॉय वॉर इन इण्डिया : 1857-1858*, भाग दो, पृ० 10
3. *वही*, पृ० 9
4. *वही*, पृ० 9
5. *वही*, पृ० 10-13
6. एस०सी० मित्तल, *इण्डिया डिस्टॉर्टेड : ए स्टडी ऑफ़ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स ऑफ़ इण्डिया*, भाग दो (नयी दिल्ली, 1998), पृ० 246; जी०बी० मैलीशन, पूर्वोद्धृत, भाग एक, अध्याय दो; जी०बी० मैलीशन, पूर्वोद्धृत, भाग दो, पृ० 453
7. आंग्ल-अफ़ग़ानिस्तान के परस्पर संबंधों के लिए विस्तार से देखें : दीनानाथ वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ०177-189

पहली बार यह महसूस किया कि ब्रिटिश सेना अजेय नहीं है।[1] बाद में लॉर्ड एलनबरो को नीति अथवा 1843 में सिंध का तथा पंजाब का (1848-'49) में झूठ-फ़रेब से भी कम्पनी साम्राज्य में विलय से ब्रिटिश घावों को न भर सका। 1855 में अफ़ग़ानिस्तान के दोस्त मुहम्मद तथा कम्पनी सरकार के मध्य एक सन्धि में अंग्रेज़ों ने किसी प्रकार के हस्तक्षेप से मना किया।

सन् 1857 की क्रान्ति के समय मुग़ल शहंशाह बहादुरशाह द्वितीय ने दोस्त मुहम्मद से सहायता माँगी, पर वह ब्रिटेन की कठोर नीति तथा दबदबे के कारण कोई मदद न कर सका। ब्रिटेन के साथ उसके संबंध अनिश्चित, परन्तु बुरे थे।[2] परन्तु अफ़ग़ानों का ब्रिटेन के प्रति रवैया कठोर बना रहा।[3] इसके दूरगामी परिणाम हुए। अफ़ग़ानों का यह रोष क्रान्ति के दिनों में तथा इसके बाद भी वहाबी अनुयायियों के आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ।[4] अफ़ग़ान अंग्रेज़ों के विरुद्ध वहावियों की मदद करते रहे। बंगाल के मुख्य न्यायाधीश तथा भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड मेयो की हत्या कर दी गयी। ब्रिटिश सरकार ने इसका शान्ति से दमन किया। परन्तु अंग्रेज़ों के प्रति प्रतिरोध आगामी वर्षों में द्वितीय तथा तृतीय आंग्ल-अफ़ग़ान युद्ध के रूप में प्रकट हुआ। अंग्रेज़ों के मन में सदैव अफ़ग़ानों द्वारा भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायता का सन्देह बना रहा। सन् 1915 से अफ़ग़ानों की सहायता से राजा महेन्द्र प्रताप (1886-1979) तथा मोहम्मद बरकतुल्ला (1854-1927) की अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री के रूप में भारत की निर्वासित प्रोवीज़िनल सरकार की स्थापना हुई[5] तथा 1919 में भी अंग्रेज़ों को भारतीयों की सहायता के लिए सम्भावित तृतीय आंग्ल-अफ़ग़ान युद्ध की सम्भावना रही।

नेपाल

दिनांक 15 सितम्बर, 1846 को एक नेपाली सैनिक-अधिकारी जंगबहादुर राणा ने नेपाल में प्रधानमंत्री का पद संभाला तथा समस्त वास्तविक शक्तियाँ अपने हाथों में केन्द्रित कर लीं। इसी काल में भारत में 1857 की क्रान्ति हुई। इस संघर्ष में नेपाल राज्य तथा उसकी जनता की भूमिका अनेक ब्रिटिश वफ़ादार रजवाड़ों से भिन्न रही। राणा यद्यपि अपना राज्य बनाए रखना चाहता था, तथापि उसका नेपाल दरबार तथा नेपाल की जनता की पूरी सहानुभूति भारत की स्वाधीनता के साथ थी। तत्कालीन सरकारी पत्र-व्यवहार इस सन्दर्भ में पर्याप्त प्रकाश डालते

---

1. जे०डब्ल्यू० केयी, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द सेपॉय वॉर इन इण्डिया : 1857-1858*, भाग एक, पृ० 274
2. यू०बी० गोकोशसेकी एवं अन्य, *ए हिस्ट्री ऑफ़ अफगानिस्तान* (मास्को, 1982), पृ० 146
3. एच० चेसन, *लॉरेंस*, भाग दो, पृ० 340; डी०सी० सरकार एवं कालीकिंकर दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ० 312-313
4. कोका अलेक्सेंड्रोवना एनन्तोनोवा व अन्य, पूर्वोद्धृत, पृ० 67-68; वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 41; जी०बी० मैलीशन, *हिस्ट्री ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी : 1857-1858*, भाग दो, पृ० 5-41; जी०बी० मैलीशन, *हिस्ट्री ऑफ़ द इण्डियन म्युटिनी : 1857-1858*, भाग तीन, पृ० 485
5. एम०ए० परसीट्स, *रेवल्युशनरीज़ ऑफ़ इण्डिया इन सोवियत रशिया* (मास्को, 1973), पृ० 21

हैं।[1] उदाहरणतः 02 मई, 1857 अर्थात् क्रान्ति से एक सप्ताह पूर्व, लखनऊ के ब्रिटिश रेजीडेन्ट सर हेनरी माण्टगुमरी लारेंस (Sir Henry Montgomery Lawrence : 1806-1857) ने भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग को लिखा, 'गत वर्ष मैंने राणा जंगबहादुर से काठमाण्डु से 1,000 वालंटियर मांगे थे जो एक सप्ताह में ही पहुँच गए थे। पर अब 34वीं तथा 19वीं गोरखा सेना आसानी से प्राप्त नहीं है।[2] 29 मई को उसने पुनः लिखा कि समय की मांग के अनुरूप नेपाल ने अपनी सैनिक सहायता न भेजी।[3] एक अन्य पत्र में लिखा कि गोरखे गौरव तथा राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा को ज़्यादा महत्त्व देते हैं।[4] इतना ही नहीं, क्रान्ति के महानायक नाना साहिब जीवन के अन्तिम क्षणों तक ब्रिटिश सरकार के हाथ न लगे थे। वह अप्रैल, 1859 में नेपाल चले गए थे।[5] अंग्रेज़ों ने उन्हें पकड़ने के लिए स्थान-स्थान पर छापे भी मारे।[6] अंग्रेज़ों ने नाना साहिब को पकड़ने के लिए पहले 5 हज़ार रुपयों का इनाम तथा बाद में जॉन ओट्रम ने यह धनराशि बढ़ाकर एक लाख रुपये कर दी थी।[7] एक प्रसिद्ध इतिहासकार[8] के अनुसार नाना साहिब तथा अज़ीमुल्ला ख़ाँ की मृत्यु नेपाल की तराई में मलेरिया ज्वर से हुई थी। मृत्यु के समय नाना साहिब की पत्नी, बाजीराव की दो विधवाएँ तथा एक पुत्री भी उपस्थित थीं। एक अन्य प्रसिद्ध इतिहासकार[9] ने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा कि नाना साहिब के साथ उनका परिवार तथा अन्य चालीस महिलाएँ भी थीं। काठमाण्डु में यह जनश्रुति प्रचलित है कि नाना साहिब की धर्मपत्नी को जंगबहादुर राणा ने अपने महल के निकट उद्यान में शरण दी थी।[10] इसी प्रकार से नेपाल के सन्दर्भ में लखनऊ की बेगम हज़रत महल के बारे में कहा जाता है। लखनऊ के नवाब वाज़िद अली शाह को 11 फरवरी, 1856 को उसके पद से हटा दिया था तथा उसे कैद करके कोलकाता के फोर्ट विलियम में रखा था, परन्तु उसकी बेगम हज़रत महल अंग्रेज़ों से संघर्ष करती रही थीं। बाद में वह भी नेपाल में अपने सैकड़ों संघर्षकर्ताओं के साथ पहुँची थी। उसकी मृत्यु बाद में 1874 ई० में काठमाण्डु में ही हुई थी।

---

1. शिव बहादुर सिंह (सं०) *लैटर्स ऑफ़ सर हेनरी मोंटगुमरी लॉरेंस : सलेक्शंस फ्रॉम द कॉरस्पॉन्डेंस ऑफ़ सर सर हेनरी मोंटगुमरी लॉरेंस ;1806-1857) ड्यूरिंग द सीज़ ऑफ़ लखनऊ फ्रॉम मार्च टू जुलाई 1857* (नयी दिल्ली, 1978)
2. *वही*, देखें : लॉरेंस का लॉर्ड केनिंग को पत्र, 02 मई, 1857
3. *वही*, देखें : लॉरेंस का लॉर्ड केनिंग को पत्र, 29 मई, 1857
4. *वही*, देखें : लॉरेंस का लॉर्ड काल्विन को पत्र, 29 जून, 1857
5. रुचि तिवारी, 'पार्टी एक्पेंशन ऑफ़ इण्डियन स्टेट्स ऑफ़ द रिवोल्ट ऑफ़ 1857 एण्ड देयर लीडर्स', *ज़र्नल ऑफ़ हिस्ट्री एलुमनी* (आगे *मेरठ ज़र्नल*), भाग चार एवं सात (2006), पृ० 65
6. आचार्य सोहनलाल रामरंग, *स्वतन्त्रता संग्राम सत्र : 1857-1947* (नोएडा, 2007), पृ० 62
7. नाना साहिब को पकड़ने के लिए एक लाख रुपये संबंधी इशतिहार के लिए देखें सतीश चन्द्र मित्तल, *1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन*, पृ० 24, परिशिष्ट 2
8. डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन, पूर्वोद्धृत, पृ० 370
9. श्रीनिवास बालाजी हर्डिकर, *1857*, पृ० 196-199
10. प्रो० (डॉ०) आराधना, 'प्रथम मुक्ति संग्राम के योद्धा नाना साहेब', *मेरठ ज़र्नल*, पृ० 145
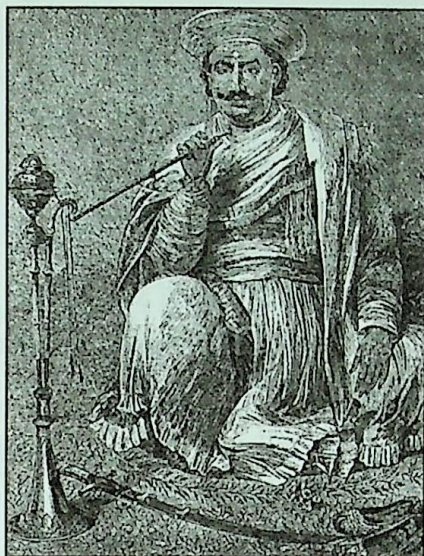
नाना साहिब पेशवा, 1821 ई०
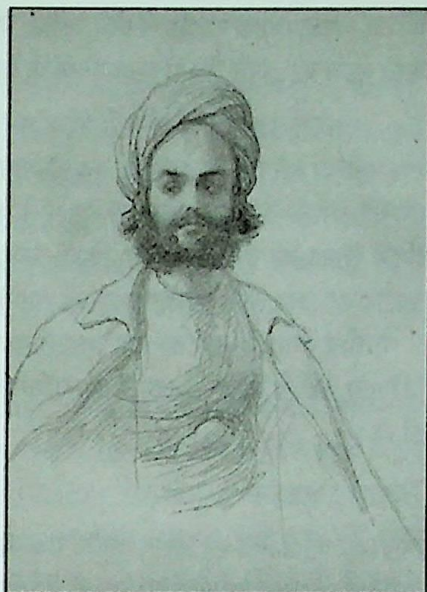
अजीमुल्ला ख़ान; विक्टोरिया–युग के प्रसिद्ध चित्रकार रिचर्ड डिकी डोयल (Richard "Dickie" Doyle : 1824-1883) द्वारा चित्रित

बेगम हज़रत महल

अतः नेपाल दरबार, नेपाली जनता, नेपाल में नाना साहिब, अज़ीमुल्ला ख़ाँ तथा बेगम हज़रत महल को अपने सैकड़ों अनुयायियों के साथ आना तथा वहाँ रहना गुप्त कार्य न था।

परन्तु 1857 की क्रान्ति में परोक्ष रूप से सहयोग देने से, उसे अंग्रेज़ों का कोपभाजन होना पड़ा था। नेपाल के आराध्य गुरु गोरखनाथ (जिनके नाम पर गोरखपुर है) की साधना भूमि को अंग्रेज़ों ने अपने अधिकार-क्षेत्र में ले लिया, परन्तु अंग्रेज़ों ने नेपाल की सामरिक तथा ब्रिटिश सुरक्षा की दृष्टि से अपने संबंध अच्छा बना रखा था। नेपाल अपनी घरेलू नीति मे स्वाधीन रहा था। लॉर्ड कर्ज़न, नेपाल की स्वामीभक्त सेना से बड़ा प्रभावित था तथा वह नेपाल को भारतीय सेना की भर्ती का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भर्ती-केन्द्र मानता था। अंग्रेज़ों ने 1923 में सिवाय विदेशी नीति के, अपना प्रभुत्व समाप्त कर दिया था। यही स्थिति 1947 तक बनी रही थी।

तिब्बत, भूटान

सन् 1857 की क्रान्ति का प्रभाव तिब्बत तथा भूटान की शान्त भूमि पर ही दृष्टिगोचर होता है। सामान्यतः तिब्बत यूरोपीय घुसपैठ से 17वीं शताब्दी तक बचा रहा था। 1624 में पहले पुर्तगाली मिशनरियों ने घुसपैठ की थी जिन्हें 1745 में भगा दिया गया था। 1774 में एक स्काटिश साहसी एवं राजनयिक जॉर्ज बोगले (George Bogle : 1746-1781) ने भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ व्यापार हेतु संबंध स्थापित किये थे। यह स्थिति किसी-न-किसी रूप से 1840 के दशक तक रही थी, परन्तु 1850 में विदेशियों के लिए यहाँ आने पर प्रतिबंध लगा दिया था तथा उनके लिए द्वार बन्द कर दिये गये। इस समय यहाँ पर 12वें दलाई लामा श्री त्रिनले ग्यात्सो (Trinelay Gyatso) थे जो 1860-1875 तक इस पद पर बने रहे थे। इन दिनों मध्येशिया में अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए ब्रिटेन और रूस में होड़ हो रही थी। 1857 की क्रान्ति के समय यहाँ के कुछ व्यक्तियों को समाचार मिले थे। अतः वहाँ भी बेचैनी बनी हुई थी। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ों ने मुख्यतः 1865 ई० से इस क्षेत्र के मानचित्रों तथा अपनी सुरक्षा के सन्दर्भ में गम्भीरता से प्रयास प्रारम्भ कर दिए थे।

साथ में लगा भूटान भी 1857 की क्रान्ति से सजग हुआ था। उल्लेखनीय है कि भारत के वायसराय लॉर्ड कैनिंग से पूर्व लॉर्ड डलहौजी ने जैन्किन्स को भूटान की सीमा का प्रबन्धक नियुक्त किया था, परन्तु भूटानियों से गोलपाड़ा, कूचबिहार तथा रंगपुर क्षेत्र में सीमा अतिक्रमण होते रहते थे, ये सीमान्त छेड़छाड़ आगे भी चलती रही थी। 1864 में ईडन मिशन (Eden Mission) के साथ हुई वार्तालाप से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि एक हिंदुस्तानी तोन्गशू पैनलो (Tongso Panlow) द्वारा दिल्ली, लाहौर और नेपाल के शासकों द्वारा भूटान सरकार से अंग्रेज़ों को भारत से खदेड़ने के लिए सहयोग मांगा था। सम्भवतः बहादुरशाह ने भूटान सरकार से मदद देने का आग्रह किया था।

म्यान्मार (बर्मा)

म्यान्मार 1800 से 1937 तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का अंग रहा। 1989 ई० तक इसका नाम 'ब्रह्मा' था, परन्तु तत्कालीन सैनिक शासन ने बिना जनता की राय जाने इसका नाम बदल दिया था।[1] कम्पनी की सरकार ने म्यान्मार पर क्रमशः 1824-26, 1852 तथा 1886 में तीन बार आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया था। 20 दिसम्बर, 1852 से म्यान्मार के पेगू प्रांत पर अधिकारकर रंगून के भव्य पैगोडे का भी ध्वंस कर दिया था।[2] इससे बंगाल की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक मलाया पेनिनसुला पर अर्थात् समस्त तटीय क्षेत्र पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया था।[3]

सन् 1857 की क्रान्ति के पश्चात् म्यान्मार अनेक क्रान्तिकारियों तथा देशभक्तों की निर्वासन-स्थली बन गया। बहादुरशाह ज़फर को जनवरी, 1858 में दिल्ली के लाल क़िले में हुए मुक़दमे के नाटक के पश्चात् म्यान्मार भेज दिया गया था।[4] देश के दुर्भाग्य से वह इस महान् क्रान्ति के लिए सर्वथा अयोग्य तथा मुग़ल सरकार की सबसे कमज़ोर कड़ी था। इसे थोड़ा विस्तार से जानना उपयोगी होगा। स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) ने 1857 की विफलता का मूल कारण 'योग्य नेतृत्व का अभाव तथा उदासीनता' माना है। वस्तुतः वह 82-वर्षीय शासक केवल निर्बल, निठल्ला तथा सर्वथा अयोग्य ही न था बल्कि हरम, हुक्का तथा शायरी का बेहद शौक़ीन था। तत्कालीन प्रायः सभी ब्रिटिश इतिहासकारों तथा वर्तमान सभी राष्ट्रीय इतिहासकारों ने 1857 की क्रान्ति की असफलता में उसे ही उत्तरदायी ठहराया है। इसमें ब्रिटिश इतिहासकार जे०डब्ल्यू० केयी तथा जी०बी० मैलिशन हैं तथा भारतीय इतिहासकारों में रमेश चन्द्र मजूमदार, एस०एन० सेन उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः उसके नेतृत्व से 1857 की क्रान्ति को बड़ा धक्का लगा। 04 मार्च, 1858 को अदालत में आँसुओं की अविरल धारा बहाते हुए बहादुरशाह ने अपने को बेक़सूर बताया। बादशाह बनाने की बात को ज़बर्दस्ती तथा दबाव के कारण बताया। उसे आगामी जीवन के लिए रंगून निर्वासन की सजा दी गयी। आज भी कुछ भ्रमित इतिहासकार एवं सेक्युलरवादी लेखक बहादुरशाह की देशभक्ति के झूठे तराने गाते हैं। बहादुरशाह की ये पंक्तियाँ– *'है कितना बदनसीब ज़फर दफ़न के लिए, दो गज़ ज़मीं भी न मिली कुये यार में'*– कभी उसने लिखी ही नहीं, न ही उसके लिए सम्भव था। वस्तुतः इन पंक्तियों का लेखक मुज़तर ख़ैराबादी था।[5]

---

1. जानकारी के लिए देखें : सतीश चन्द्र मित्तल, 'आंग सान सू ची : संघर्ष तथा विद्रोह की प्रतिमूर्ति', *पाञ्चजन्य*, 22 जुलाई, 2012
2. वी०ए० स्मिथ, पूर्वोद्धृत, पृ० 702
3. पी०ई० रॉबर्ट्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 349; ईश्वरी प्रसाद, *ए न्यू हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया*, पृ० 428,147
4. देखें : *प्रोसीडिंग्स ऑफ़ ट्रायल ऑफ़ बहादुरशाह* (लन्दन, 1858)
5. देखें : प्रो० असलम परवेज़ (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय) तथा उर्दू *अदब* के संपादक का लेख, *दैनिक जागरण*, 18 फरवरी, 2007
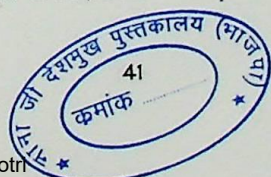
दिनांक 20 सितम्बर, 1857 को हुमायूँ के मक़बरे (दिल्ली) में छिपे हुए अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह ज़फ़र को उनके परिवार के साथ गिरफ्तार करते हुए ब्रिटिश अधिकारी विलियम स्टीफन रैक्स हडसन (William Stephen Raikes Hodson : 1821-1858)
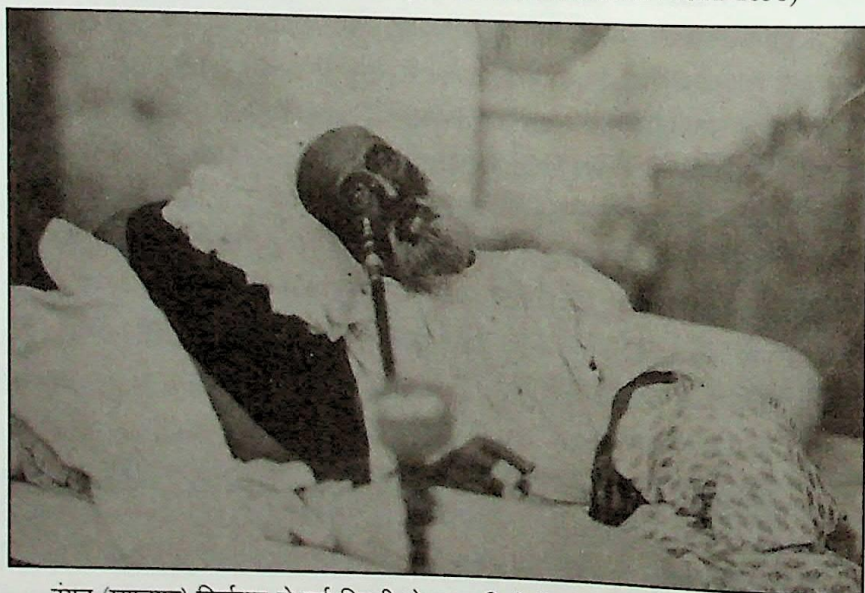
रंगून (म्यान्मार) निर्वासन से पूर्व दिल्ली के लाल क़िले में अंग्रेज़ छायाकार चार्ल्स शेफर्ड (Charles Shepherd : ?-1878) एवं रॉबर्ट क्रिस्टोफर टेलर (Robert Christopher Tytler : 1818-1872) खींची गई अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह ज़फ़र की अन्तिम ज्ञात तस्वीर, मई, 1858 ई०

निश्चय ही क्रान्ति का यह तथाकथित नायक न म्यान्मार के राष्ट्रवादियों अथवा वहाँ के मुसलमानों, हिंदुओं अथवा बौद्धों में कोई प्रेरणा जगा सका। 07 नवम्बर, 1862 को बहादुरशाह की रंगून की केन्द्रीय जेल में मृत्यु हुई। उसकी लाश को बेगोरे ढंग से जेल से बाहर कहीं दफ़ना दिया गया। म्यान्मार के लोगों को पता ही नहीं चला कि उसे दफ़नाया भी गया है या नहीं। अगले तीस वर्षों तक अर्थात् 1892 तक उक्त स्थान के आस-पास किसी के आने-जाने की मनाही कर दी गयी। खेती की भूमि होने के कारण लोग वह जगह भी भूल गये, जिसके आस-पास बहादुरशाह को सम्भवतः दफ़नाया गया था। इसके बाद ही उस सम्भावित भूमि पर एक मकबरा बनाया गया जिसकी दीवारें हरे रंग की तथा मीनार पर चाँद-सितारे का चिह्न है।

यद्यपि यह सत्य है कि कालान्तर में राजनैतिक तथा पार्टी के हितों और मुस्लिम तुष्टिकरण के लिए 1977 में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी, 1987 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी तथा उसके 25 वर्ष बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इस मकबर को महत्त्व दिया। परन्तु इसके बाद जो देश की स्वाधीनता के लिए लड़े और जो म्यान्मार की जेलों में रहे, ऐसे सर्वश्री लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, सरदार अजीत सिंह तथा सुभाषचन्द्र बोस-जैसे महान् पुरुष यह सम्मान कभी प्राप्त न कर सके।

विश्व के अनेक भागों में क्रान्ति का प्रभाव

उल्लेखनीय है कि 1857 की क्रान्ति की गाथाएँ आगामी वर्षों में विश्व के इतिहास में, विशेषकर ब्रिटिश साम्राज्य तथा उपनिवेशों में गाथाएँ बन गयीं। विश्व में जहाँ-जहाँ कोई अपनी रोजी-रोटी के लिए गया, वह अंग्रेज़ों के क्रूर अत्याचारों, नृशंस हत्याओं तथा अपार धन-जन की हानि को भूल न सका। परन्तु यह भी कटु सत्य है कि इस क्रान्ति ने आर्थिक क्षेत्र में तथा आगामी सीधे ब्रिटिश शासन की नीतियों, प्राकृतिक प्रकोपों तथा अकालों ने भारतीयों की स्थिति बदल दी। क्रान्ति की मार से लाखों सैनिक मारे गए थे। परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों में जहाँ क्रान्तिकारी अधिक प्रबल थे, मुख्यतः उत्तरप्रदेश, बिहार से हज़ारों को नौकरी की तलाश में, मज़दूरी के लिए विश्व के विभिन्न औपनिवेशिक बस्तियों में जाकर काम करना पड़ा। वस्तुतः आज भी यह महत्त्वपूर्ण शोध का विषय है। यहाँ केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। त्रिनिदाद[1] में क्रान्ति से पूर्व खेतों में कार्य के लिए भारतीयों को उनके परिश्रम तथा विश्वसनीयता[2] के कारण प्रमुख स्थान दिया जाता था तथा उनको भारत से लाने के लिए यातायात तथा अन्य सुविधाएँ दी

---

1. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें : जे०सी० झा, 'द इण्डियन म्युटिनी-कम-रिवोल्ट ऑफ़ 1857 एण्ड त्रिनिदाद (वेस्ट इण्डीज़)', *ज़र्नल ऑफ़ हिस्ट्री* (त्रिवेन्द्रम), भाग एक, पार्ट दो, अगस्त, 1972, सीरियल नं० 140, पृ० 441-458
2. *वही*, पृ० 442

जाती थीं।[1] 1857 की क्रान्ति की अनेक घटनाएँ त्रिनिदाद के मुख्य पत्रों– *पोर्ट ऑफ़ स्पेन गज़ट (Port of Spain Gazette)* तथा *द त्रिनिदाद सेंटिनल (The Trinidad Sentinel)* में छपती थीं। पर समाचार वे होते जो लन्दन प्रेस से आते थे। *पोर्ट ऑफ़ स्पेन गज़ट* ने 08 जून, 1857 को भारत-संबंधी मामले के संकट को पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बतलाया था। इसी पत्र ने 26 अगस्त, 1857 को शहंशाह बहादुरशाह की हिंदू-मुसलमानों के इकट्ठा होने तथा यूरोपीयों तथा ईसाइयों के विरुद्ध घोषणा को छापा था। *द त्रिनिदाद सेंटिनल* ने 10 दिसम्बर, 1857 के अंक में ब्रिटेन द्वारा दिल्ली पर पुनः अधिकार के लिए 61 ब्रिटिश अधिकारियों तथा 1,178 ब्रिटिश सैनिकों के मारे जाने का समाचार लिखा था। इन दोनों समाचार-पत्रों से ज्ञात होता है कि 1857 की क्रान्ति से भारत के मज़दूरों के आभाव में सरकारी स्तर पर घबराहट हो गई थी।[2] परन्तु क्रान्ति के फलस्वरूप बेगारी से सरकार को सुविधाएँ ही नहीं, बल्कि वरदान के रूप में भारतीय मजदूरों की संख्या तेजी से बढ़ती गई थी।[3] अतः न्यूनाधिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप भारतीयों को नौकरी की खोज में अनेक देशों में जाना पड़ा। परन्तु वे जहाँ भी गये, अपने कठोर परिश्रम तथा ईमानदारी से विश्व की अनेक उजाड़, जंगली क्षेत्रों को संपन्नता, समृद्धि से नन्दन वन बना दिया।

उपसंहार

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है इस महान् क्रान्ति की प्रकृति तथा स्वरूप के बारे में कोई कुछ भी कहे, परन्तु यह सत्य है कि ये विश्व में पहली बार यूरोपीय साम्राज्य के विरुद्ध एक विशालतम एवं महानतम चुनौती थी। इससे बड़ा संघर्ष किसी भी देश की प्रसिद्ध क्रान्तियों में न हुआ था। इसने न केवल ब्रिटिश साम्राज्य तथा औपनिवेशवाद की जड़ों को हिला दिया, अपितु विश्व की घनी आबादीवाले यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के जनमानस को आन्दोलित कर दिया। इसके ही कारण क्रान्ति के समाचार प्रथम पाँच महीनों तक विश्व के सभी समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ बने रहे। इसने अनेक राष्ट्रों में स्वाधीनता की उमंग पैदा की। भारतीयों की दृष्टि से यह संघर्ष का अन्त नहीं अपितु स्वाधीनता का पहला अवलोकन,[4] प्रथम अध्याय था। आवश्यक है कि 1857 की क्रान्ति के विश्वव्यापी प्रभावों तथा परिणामों को जानने के लिए गम्भीर शोधकार्य जो क्षेत्र अभी खाली पड़ा है, उसकी पूर्ति की जाये। इसके साथ ही भारत में भी इसके विस्तार तथा प्रभाव को जानने के लिए एक 'राष्ट्रीय पंजिका' (National Register) बनाया जाए जिसमें भारत के विभिन्न ज़िलों के अनुसार विवरण हो।

---

1. जे०सी० झा, 'द इण्डियन म्युटिनी-कम-रिवोल्ट ऑफ़ 1857 एण्ड त्रिनिदाद (वेस्ट इण्डीज़)', *ज़र्नल ऑफ़ हिस्ट्री* (त्रिवेन्द्रम), भाग एक, पार्ट दो, अगस्त, 1972, सीरियल नं० 140, पृ० 443; त्रिनिदाद को सरकार ने 09 जनवरी, 1857को उन्हें विशेष तोहफ़े तथा यातायात की सुविधाओं की घोषणा की थी।
2. *वही*, पृ० 446; *पोर्ट ऑफ़ स्पेन गज़ट* का विचार था कि उन्हें 1858 में 3,000 से भी ज़्यादा व्यक्ति नहीं मिल पायेंगे– *पोर्ट ऑफ़ स्पेन गज़ट*, अक्टूबर, 24, 1857
3. *वही*, पृ० 450-452
4. डॉ० अ०पा०जे० अब्दुल कलाम, 'हम भारत के लिए क्या कर सकते हैं ?', *राष्ट्रधर्म*, अगस्त 2002

परिशिष्ट 1
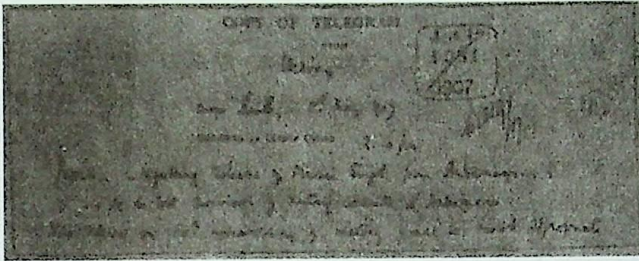
Release of Musai Singh from Andamans

Extracts from a Copy of Telegram

COPY OF TELEGRAM

J & P
1381
1907

FROM

Viceroy

1319/07

DATED Simla, 1st May 1907.

RECEIVED AT LONDON OFFICE 2.16 p.m.

Private ... regarding release of Musai Singh from Andamans
... He is last survivor of mutiny convicts in Andamans.

His release on 50th anniversary of mutiny would be most appropriate.

परिशिष्ट 2

जर्नल ऑट्रम द्वारा 28 फरवरी, 1858 को जारी किया गया इशतिहार, जिसमें इस बात का ऐलान किया गया है कि ढोंदू पन्त (नाना साहिब) को पकड़वानेवाले को एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा।

इश्तिहार

२८ फरवरी १८५८ ॥
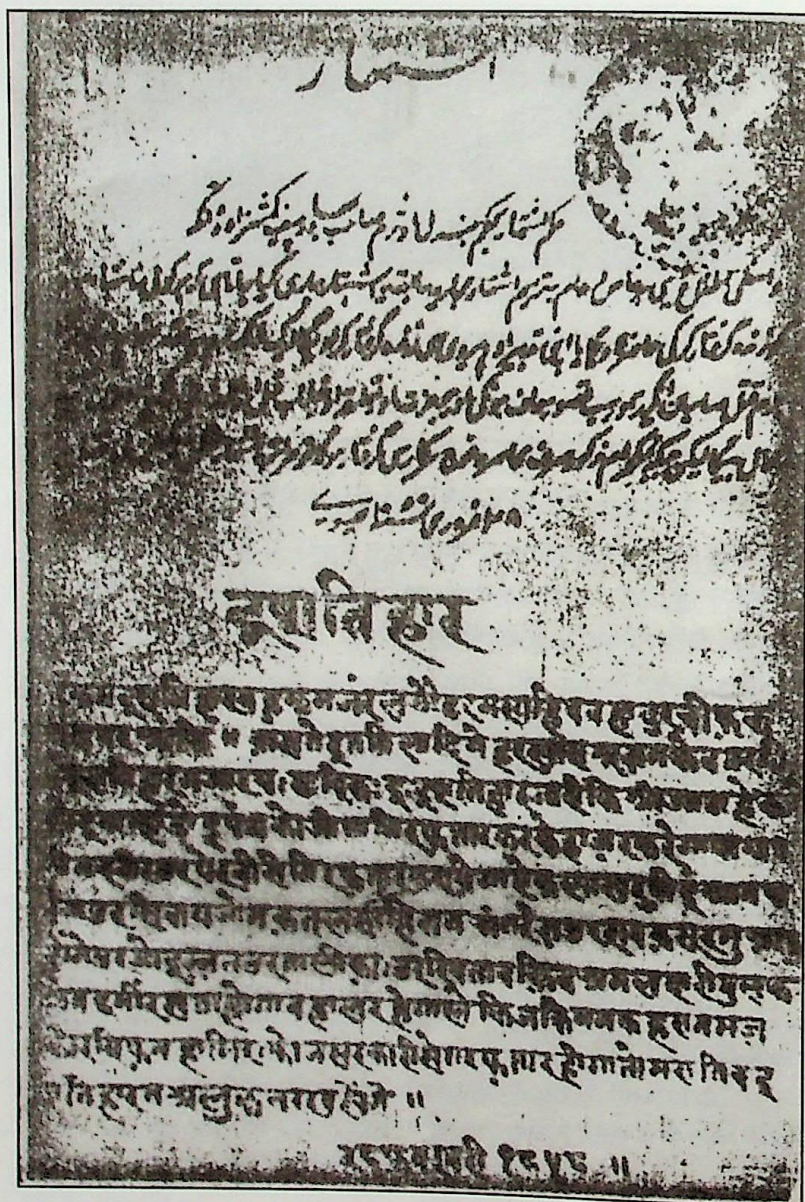
डॉ० सतीश चन्द्र मित्तल

जन्म : 1938 ई०; शिक्षा : एम०ए० द्वय (इतिहास एवं राजनीतिविज्ञान), पीएच० डी०; अवकाशप्राप्त वरिष्ठ प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास–विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय; सम्बद्धता : विद्या भारती, भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, भारतीय इतिहास काँग्रेस, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना; अध्यक्ष, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना;

प्रमुख पुस्तकें : 1. *फ्रीडम मूवमेंट इन पंजाब*, 2. *सोर्सेज ऑन नेशनल मूवमेंट इन इण्डिया*, 3. *हरियाणा : ए हिस्टॉरिकल पर्सपेक्टिव (1761–1966)*, 4. *सेलेक्टेड एनोटेटेड बिब्लियोग्राफ़ी ऑन फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया : पंजाब एण्ड हरियाणा*, 5. *इण्डिया डिस्टॉर्टेड : ए स्टडी ऑफ हिस्टॉरियन्स ऑन इण्डिया (3 वॉल्यूम्स)*, 6. *मॉडर्न इण्डिया*, 7. भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, 8. विश्व में साम्राज्यवादी साम्यवाद का विकास तथा पतन, 9. साम्यवाद का सच, 10. भारत के राष्ट्र–चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास–दृष्टि, 11. आधुनिक भारतीय–इतिहास की प्रमुख भ्रान्तियाँ, 12. *1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन* (हिंदी, कन्नड़ एवं गुजराती– 3 भाषाओं में), 13. मुस्लिम–शासक तथा भारतीय–जनसमाज, 14. अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य तथा महाराजा कृष्णदेवराय, 15. *1857 : द ट्रायबल लीडरशिप* (अंग्रेज़ी एवं हिंदी– 2 भाषाओं में), 16. *1857* के महासंघर्ष में क्या पंजाब अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार रहा ?, 17. ब्रिटिश–इतिहासकार तथा भारत, 18. काँग्रेस : अंग्रेज़–भक्ति से राजसत्ता तक, 19. स्वामी विवेकानन्द की इतिहास–दृष्टि, 20. हिंदुत्व से प्रेरित विदेशी महिलायें, 21. राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष, 22. राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत में राष्ट्रीयता का स्वरुप : प्रारम्भ से मुस्लिम काल तक इत्यादि;

इनके अतिरिक्त लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित; अनेक लेख प्रतिष्ठित शोध–पत्रिकाओं, संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों में पठित एवं प्रकाशित

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन, 'केशव-कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-23675667
ई-मेल : abisy84@gmail.com
वेबसाइट : www.itihassankalan.org, www.abisy.org